“DHARMVEER BHARTI KE ROMANI KAVYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN”

(Dissertation submitted to the University Of Hyderabad in partial fulfilment of Degree)

MASTER OF PHILOSOPHY

IN

HINDI

2019

ABHISHEK KUMAR UPADHYAY (17HHHL04)

PROF.C.ANNAPURNA (Supervisor)

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad-500046

Telangana (INDIA)

“धर्मवीर भारती के रोमानी काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन”

हैदराबाद विश्वविद्यालय में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

2019

अभिषेक कुमार उपाध्याय

(17HHHL04)

प्रो. सी. अन्नपूर्णा

(निर्देशक)

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्विद्यालय

हैदराबाद - 500046

तेलंगाना (भारत)

DECLARATION

I, **ABHISHEK KUMAR UPADHYAY,** hereby declare that the dissertation **DHARMVEER BHARTI KE ROMANI KAVYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN [धर्मवीर भारती के रोमानी काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन]** submitted by me under the guidance and supervision of **PROF.C.ANNAPURNA** is a bona-fide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of 'Master of Philosophy'. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBENT.

Date: Name: ABHISHEK KUMAR UPADHYAY

Place: Reg. No. : 17HHHL04

University of Hyderabad

____

Signature of the Student

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled "**DHARMVEER BHARTI KE ROMANI KAVYA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN**" **[धर्मवीर भारती के रोमानी काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन]** submitted by **ABHISHEK KUMAR UPADHYAY** bearing Regd. No. **17HHHL04** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bona-fide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor
(Prof. C. ANNAPURNA)

Head of the Department

Dean of the School

<u>अनुक्रमणिका</u>

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन 02-05

प्रथम अध्याय : 06-40

हिंदी में रोमानी काव्य-प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास

1.1 हिंदी में रोमानी काव्य के प्रमुख आधार स्त्रोत

1.2 हिंदी में स्वच्छन्दतावाद संबंधी आधारभूत साहित्यिक मान्यताएँ

द्वितीय अध्याय 41-62

नई रोमानी हिंदी कविता का साहित्यिक वैशिष्ट्य और धर्मवीर भारती की कविता

2.1 गीति-रचना

2.2 आधुनिकता-बोध और रोमानी काव्य चेतना का द्वंद्व

तृतीय अध्याय 63-78

नई कविता के रचनात्मक विकास में धर्मवीर भारती की काव्यगत मान्यताओं का मूल्यांकन

उपसंहार 79-84

संदर्भ ग्रंथ-सूची 84-94

प्राक्कथन

हिंदी कविता सभ्यता के विकास के साथ लगातार परिवर्तित होती हुई आज भी अपने मुखर रूप में जीवित है। इसका मतलब है कि आगे भी इसकी यात्रा बाधित होने वाली नहीं है। किसी भी चीज के निरंतर प्रवाह में उतार-चढ़ाव आता है, उसकी गति कभी तेज तो कभी धीमी होती है। नई अनुभूतियाँ, नई शैलियाँ और नई कल्पनाएँ उसकी समय सापेक्षता को कायम रखती हैं। ये अलग बात है कि उसके विशिष्ट गुण के कारण समाज उसको स्वीकार करता है या उसके अवगुण के कारण नकारता है।

कविता के संदर्भ में देखें तो इसके पुरानेपन और नयेपन के बीच जो यात्रा है, वह बहुत विविध और दिलचस्प है। लेकिन इसकी विविधता केवल बाहरी स्तर पर है। कविता का उद्गम स्थल हमेशा से एक ही रहा है- वह है 'भाव' जिसे रामचंद्र शुक्ल भी 'भावयोग' कहते हैं और इसके साधना को कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं। कविता के स्वरूप पर संस्कृत साहित्य से लेकर आज तक निरंतर बात होती रही है। इसका श्रेणी विभाजन विशिष्टता, चमत्कार, लोक-प्रियता तथा शिष्टता आदि के आधार पर होता रहा है। अगर हिंदी में आरंभ से ही देखें तो वीरगाथा काव्य, भक्तिकाव्य, रीतिकाव्य या शृंगार काव्य से चलती हुई परम्परा आधुनिक समय में तमाम छोटे-छोटे श्रेणियों में विभक्त हुई। जिसमें एक धारा ‘स्वच्छंदतावाद’ के रूप में चिह्नित हुई। इसके नाम और स्वरूप निर्धारण को लेकर काफी विवाद रहा लेकिन आगे चलकर कई स्थापनाएँ सामने आईं और इसे पश्चिमी आंदोलन ‘रोमांटिसिज्म’ जो शास्त्र के बंधन से मुक्ति के रूप में उभरा के प्रभाव के रूप में देखा-समझा गया। लेकिन वहीं दूसरी

ओर हिंदी के कुछ विद्वानों ने इसको अपनी ही सांस्कृतिक जड़ों के रूप में पाया और कहा कि हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य अपने देश और समाज की उपज है।

लेकिन जब भारतीय साहित्य का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि जिस रोमानी काव्य को लेकर एक समय पश्चिम में 'रोमांटिसिज्म' एक आंदोलन या वाद के रूप में देखा गया। वह भारतीय संस्कृत साहित्य में कालिदास, भवभूति के यहाँ मौजूद है और वह निरंतर समय के साथ किसी न किसी रूप में प्रवाहित है, जो वर्तमान में भी अपने नए मूल्यों और मान्यताओं के साथ उपस्थित है।

प्रस्तुत शोध विषय में इस बात को देखना-समझना है कि रोमानियत जो कि मनुष्य जीवन का नैसर्गिक और जरूरी पक्ष है जिसे आज तक साहित्य के भीतर किस रूप में लाया गया और उसका पाठ उस समय और समाज में किस तरह हुआ।

परंपरा में झाँककर देखें तो आदिकाल में विद्यापति के काव्य से ही रोमानी प्रवृत्ति मिलती है, भक्तिकाल में रोमानियत की कई तहें हैं, रीतिकाल का तो पूरा काव्य ही रोमानी प्रवृत्ति और श्रृंगार पर रोमानियत अवलंबित है लेकिन इस पर केंद्रित अध्ययन केवल हिंदी साहित्य में 1920 से 1936 के आसपास तक एक संदर्भ और नाम विशेष में हुआ। इस दृष्टि से देखें तो वह साहित्य जिसमें मनुष्य की निजी आजादी, व्यक्तित्व की छूट, सौंदर्य की एक अपनी दुनिया जिसमें रोमानी प्रवृत्ति शामिल हो। प्रत्येक युग में रोमानी प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में अवश्य रहती है। यह मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। "न कोई काल या वाद या व्यक्ति निरपेक्ष रूप में 'क्लासिकल' या 'रोमांटिक' होता है बल्कि मनुष्य की वृत्तियाँ ही 'क्लासिकल' और 'रोमांटिक' होती है।"[1]

[1] 'छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन', कुमार विमल, पृष्ठ-26

नए युग के इस नए मोड़ से हिंदी कविता की प्रधान गतिविधि को स्वच्छंदतावाद का एक व्यापक नाम दिया गया जिसमें छायावाद, रहस्यवाद आदि विविध प्रकार की वृत्तियों की कविताओं को इसमें सम्मिलित किया गया। जिसकी परिधि में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा जैसे आधुनिक युग के अनेक महान कवियों का समावेश सहज ही हो जाता है।

लेकिन छायावाद के बाद के काव्य में रोमानियत अगर है तो उसका व्यवस्थित अध्ययन क्यों न किया जाए? ऐसे में धर्मवीर भारती ऐसे कवि हैं जो इस दृष्टि से अपनी ओर खींचते हैं। इनके यहाँ रोमानियत रहस्यवाद का पर्दा हटाकर अपने स्वाभाविक रूप में कविता में उपस्थित है। जिसके केंद्र में स्त्री और पुरुष है, उसकी अपनी दुनिया है। इनके बीच की सारी सच्चाईयाँ अपने वास्तविक रूप में उपस्थित है, इसलिए वह पाठक के जीवन तक पैठ करती है। उसके भीतर कोई कल्पना लोक नहीं, कोई रहस्यवादिता नहीं, कोई लुकाव-छिपाव नहीं। इस तरह इन के विपुल काव्य में रागात्मकता केंद्र में है। उनमें सभी स्थितियाँ, घटनाएँ मिलकर जीवन को एक मोहक आवरण में रंगी हुई है जिससे एक नया काव्य-स्वाद पैदा होता है।

इस लघु शोध-प्रबंध को तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय 'हिंदी में रोमानी काव्य-प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास' के अंतर्गत रोमानी काव्य के प्रमुख आधार स्रोतों पर बात करते हुए हिंदी में स्वच्छंदतावाद संबंधी आधारभूत साहित्यिक मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है।

दूसरे अध्याय 'नई रोमानी हिंदी कविता का साहित्यिक वैशिष्ट्य और धर्मवीर भारती की कविता' में रोमानी के बदलते स्वरूप को भारती जी के कविताओं के माध्यम से चिन्हित किया गया है।

तीसरे अध्याय में 'नई कविता के रचनात्मक विकास में धर्मवीर भारती की काव्यगत मान्यताओं का मूल्यांकन' किया गया है। धर्मवीर भारती जिनका काव्य-सृजन प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के संघर्ष से निर्मित होता है, लेकिन जिनकी रचनात्मकता का उत्कर्ष 'नई कविता' में ही दिखाई पड़ता है।

इस तरह 'धर्मवीर भारती के रोमानी काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन' करते हुए रोमानियत की तहों को समझने का प्रयास किया गया है।

भावनाएं जहाँ प्रबल होती हैं वहाँ शब्दों का खासा महत्त्व तो नहीं होता है लेकिन शब्द देना धरती पर सिर्फ मनुष्यों के ही वश में है। शब्द देना जरूरी इसलिए भी है क्यों कि शब्द ही संवाद को सार्थक बनाते है। सारी बहस शब्दों के माध्यम से ही होती है, शब्दों से ही शोध संभव हुआ है। इसलिए शोध-कार्य के कुशल निर्देशन के लिए मैं प्रो. अन्नपूर्णा मैम का सदा आभारी रहूँगा, जिनकी सार्थक पहल ने शोध को सही दिशा दी। वैचारिक बहस के लिए ठोस धरातल और उसके लिए बौद्धिक क्षमता विकसित करने वाले सभी अध्यापकों का शुक्रगुज़ार हूँ। सफ़र में साथ रहने वाले सभी सहयात्रियों को धन्यवाद नहीं बल्कि आगे के सफ़र में साथ बने रहने की कामना करता हूँ। क्योंकि-

"सफ़र में ऐसे कई मरहले भी आते हैं
हर एक मोड़ पे कुछ लोग छूट जाते हैं।"

अभिषेक कुमार उपाध्याय

प्रथम अध्याय

1.हिंदी में रोमानी काव्य-प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास

1.1 हिंदी में रोमानी काव्य के प्रमुख आधार स्त्रोत

1.1.1 प्रकृति के विविध रूप

1.1.2 मानवीय सौंदर्य और प्रेम

1.1.3 भाववादी दर्शन

1.2 हिंदी में स्वच्छन्दतावाद संबंधी आधारभूत साहित्यिक मान्यताएँ

प्रथम अध्याय

हिंदी में रोमानी काव्य-प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास

मानवीय सभ्यता का विकास धीरे-धीरे इस मोड़ तक आ पहुँचा है, जहाँ श्रम की महत्ता को मशीनों ने ख़त्म कर दिया है। मनुष्य की सार्थकता की कसौटी को कंप्यूटर और इंटरनेट की सूचना क्रांति ने पूरी तरह बदल दिया है। मशीनों के बढ़ते स्पेस ने मनुष्य को संवेदना के स्तर पर काफी कमजोर किया है। जिसके कारण वर्तमान समय में कर्कशता ने राग को कम किया है। 'राग' जो मानवीय जीवन को भीतर से मजबूत बनाता है। जो बुरे से बुरे वक्त में भी संभावना सूचकांक के रूप में साथ रहता है। समय के बदलते तेवर से सबमें गिरावट आई है।

'पोस्टमॉडर्निज्म एन्ड पॉपुलर कल्चर' में जॉन डॉकर का ये कहना कि उद्योगवाद के इस युग में कविता और कल्पना के लिए बहुत ही क्षीण आशा रह जाती है। यह तो मशीनों की परिव्याप्तता का युग है।

पित्रिम सोरोकिन ने भी 'क्राइसिस ऑफ आवर एज' में भौतिक वर्चस्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि मंदिर ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाएगा, धर्म का खोखलापन भी बढ़ता जाएगा। इसी तरह मनुष्य के जीवन में जैसे-जैसे भौतिक सभ्यता का हस्तक्षेप बढ़ेगा, उसकी संवेदना क्षीण होती जाएगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि भौतिक सुख-सुविधाओं के द्वारा मनुष्य को आकर्षित तो किया जा सकता है, उसे प्रेरित नहीं किया जा सकता। जबकि कविता के लिए प्रेरणा या स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति बहुत आवश्यक चीज है। वर्तमान कविता के समक्ष यही संकट है।

बहरहाल संकटों का दौर तो हर क्षेत्र में आता-जाता रहता है, निर्भर इस पर करता है कि संकटों का सामना समय और समाज कैसे करता है। उससे उसे कितना फायदा या नुकसान होता है। समय के

सरोकारों के साथ हिन्दी कविता की यात्रा भी काफी दिलचस्प रही है। जिसमें स्वच्छंद कविता या रोमानी कविता का विशेष महत्त्व है। स्वच्छंद कविता तेजी से बदलती हुई दुनिया में मनुष्य की चिंताओं के प्रतिफलन के रूप में उभरती है। इन कविताओं में कल्पना के ऐसे देश की तलाश है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य के रिश्तों के समुचित रेखांकन के साथ-साथ स्वयं मनुष्य और मनुष्य के बीच न्यायपूर्ण संबंध स्थापित हो सके। या यों कहें कि रोमानी कविता मनुष्य और कविता के रिश्तों की नई व्याख्या से भी संबंधित है।

हिंदी साहित्य में रोमानी काव्य परंपरा का अपना इतिहास है, जिसका अध्ययन एक प्रवृत्ति के रूप में 1920 के बाद शुरू होता है और जिसको पश्चिम के 'रोमांटिसिज्म' से जोड़कर देखा-समझा जाता है। रोमांटिसिज्म जिसका हिंदी रूपांतर 'स्वच्छंदतावाद' है। यह शब्द अपनी खास सीमाबद्धता के बावजूद साहित्यशास्त्र का कठिन शब्द रहा है। हालांकि यह आलोचना जगत का बहुप्रयुक्त शब्द है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नई काव्यधारा का विवेचन करते समय रोमांटिसिज्म के समान अर्थों में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन रोमांटिसिज्म या 'स्वच्छंदतावाद' के बहसों से बाहर निकल कर हिंदी साहित्य में रोमानी या स्वछंद कविता की बात करें तो आद्यंत इसकी उपस्थिति मिलती है। भले समय की सीमाओं के कारण उसका रूप गठन भिन्न रहा हो। हिंदी में रोमानी काव्य प्रवृत्ति आदि से वर्तमान तक है। आदिकालीन साहित्य में भी परंपरावादी चारणों और स्वच्छंद भाव-चर्या के उपासक कवियों की रचनाएँ मिल जाएंगी पर आदिकालीन एवं आधुनिक काव्य की विधाओं में एक स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाए, तो आदिकालीन स्वच्छंद काव्य और आधुनिक स्वच्छंदतावादी काव्य की मूल चेतना में हमें तलस्पर्शी समानता मिलेगी। दोनों युगों के काव्य नियमों और परंपरागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हुए उत्पन्न होते हैं, पर रूपाकार और

अभिव्यंजना की दृष्टि से उनमें एक अलंघ्य अंतराल की प्रतीति होती है। वस्तुतः प्रत्येक युग में स्वच्छंद कविताएँ लिखी जाती रही हैं।

"रोमांस मधुर, अद्भुत तथा रोमांचकारी भावों का व्यंजक है जिनका समुचित रूप से वर्णन करना संभव नहीं।"[2] रोमानी मनुष्य का ऐसा भाव है जो सार्वभौमिक और सर्वकालिक है। रोमानी या रोमांटिक होना मानवीय संबंधों के अर्थबोध को प्रगट करता है। जीवन में रंगीनियत भरता है। ऐसे में मनुष्य द्वारा सृजित प्रत्येक कलाओं में उसकी छटा किसी न किसी रूप में मौजूद मिलती है। "Romans शब्द से ही 'Romanticism' और 'Romantic' बना है जिसका अर्थ है रोमानियत, रोमानी अथवा स्वच्छंदता। रोमांटिक शब्द एक भावात्मक विशेषता रखने वाला शब्द है जो अत्यंत ही रोचक, चितरंजक, मनभावन, मोहक तथा उत्तेजक है।"[3]

इस तरह रोमानी कविता का हिंदी साहित्य में एक यात्रा अनवरत रूप से रहा है; जिसका उत्कर्ष 1920 से 1936 तक दिखाई पड़ता है। 'रोमांटिसिज्म' या 'स्वच्छंदतावाद' की अपनी सीमाएँ हो सकती है, लेकिन रोमानी भाव हमेशा स्वछंद रहा है और उस भाव से सृजित कविता चाहे किसी भी रचनाकार या समय की हो 'रोमानी काव्य' कहलाने का हक रखती है। आधुनिक भावबोध से समन्वित धर्मवीर भारती रोमानियत की परंपरा में प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कविताओं से मुखातिब होने से पहले रोमानी काव्य-प्रवृतियों के उद्भव और विकास की परंपरा की समझ जरूरी है।

1.1 हिंदी में रोमानी काव्य के प्रमुख आधार स्रोत :

[2] कृष्णमुरारी मिश्र, 'रोमांटिक युगीन अंग्रेजी कविता और छायावाद', पृष्ठ संख्या-02

[3] त्रिभुवन सिंह, 'आधुनिक हिंदी कविता की स्वच्छंद-धारा', पृष्ठ संख्या-35

किसी भी कला का सृजन अनायास नहीं होता, बल्कि उसके पनपने में कुछ स्थितियों की भूमिका रहती है। वह स्थितियाँ कुछ भी हो सकती हैं जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव उस कला पर दिखाई पड़ता है। कविता भी मानवीय संवेदना का सृजन है, जिसकी एक सामाजिक उपादेयता होती है। उसके भिन्न-भिन्न रूपों के पीछे सामाजिक कारक होते हैं जिसकी वजह से इनमें स्वरूपगत बदलाव स्वाभाविक है। इसलिए बदलते सामाजिक संदर्भों और कालों में कविता भी अपने रूप और कथ्य दोनों स्तर पर बदलती रही है। अर्थात स्रोत की महती भूमिका सृजन के लिए है। स्रोतों से सृजनात्मक स्वरूप बनता है और उसके सरोकार निश्चित होते हैं।

हिंदी में रोमानी काव्य के सृजन के प्रमुख आधार स्रोत क्या रहे हैं? ऐसी कौन सी स्थितियों में जन्मी कविता रोमानी कहलाई? और अपनी यात्रा में रोमानी कविता के आधार स्रोत भी बदले या आद्यंत वही रहे, इन सबकी चर्चा इस अध्याय का अभीष्ट है।

प्रेमशंकर के अनुसार, "हिंदी स्वच्छंदतावाद एक परतंत्र देश की उपज है, इसलिए उसकी बनावट यूरोपीय रूमानी आंदोलन से भिन्न है।"[4] इसलिए प्रेमशंकर यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय स्वच्छंदतावाद में वैसे प्रत्यक्ष दृश्य नहीं मिल सकते जैसे कि पश्चिम की रचनाओं में। यह बात काफी हद तक ठीक है कि दृश्यों में बदलाव कालगत और सीमागत हो, लेकिन यह भी सच है कि मनुष्य का वह रोमानी भाव जिससे स्वच्छंद सृजन संभव होता है, वह काल और सीमा का अतिक्रमण करता है। इसलिए आधार स्रोतों में समानता कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन वास्तव में हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य के बनने में बाहरी प्रभावों की अपेक्षा देश के सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव अधिक ध्यान देने योग्य हैं।

---

[4] प्रेमशंकर, 'हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य', पृष्ठ संख्या-19

वादों से उन्मुक्त होकर रोमानी भाव जो मनुष्य का अत्यंत निजी और स्वच्छंद भाव है; उस भाव से सृजित कविताओं में प्रमुख रूप से जो स्रोत उभर कर आते है, उनमें प्रकृति के विविध रूप, सौंदर्य की अभीष्टता, स्वाभाविक रूप से व्यक्ति की निजता, सामाजिक या परिवेशगत आधार के साथ-साथ व्यवहारिक और विचारधारात्मक स्रोतों को भी देखा जा सकता है। जो सभी मिलकर 'रोमानियत का समाजशास्त्र' गढ़ते हैं।

1.1.1 प्रकृति के विविध रूप :

मनुष्य के अस्तित्व में आने से लेकर आज तक प्रकृति का साथ हमेशा रहा है। प्रकृति के बगैर मनुष्य के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मनुष्य का सृजन ही प्रकृति के गोद में हुआ, ऐसे में उससे दूरी का सवाल ही नहीं उठता। ये अलग बात है कि मनुष्य अपनी विकास यात्रा के साथ प्रकृति को नजर अंदाज करता गया और विकास की अंधी दौड़ में जीवन को भी दांव पर लगा दिया। लेकिन इसके बावजूद प्रकृति से दूरी का कोई विकल्प मनुष्य के पास नहीं है। प्रकृति ही मनुष्य के जीवन का संचालक है, उसकी प्रत्येक गतिविधियाँ मानवीय जीवन को प्रभावित करती है।

'सुबह होती है शाम होती है
उम्र यूँ ही तमाम होती है'

सुबह-शाम होने से ही जिंदगी का तमाम होना संभव होता है। लेकिन आगे चलकर औद्योगिक क्रांति ने मानवीय विकास की नई संभावनाओं का द्वार खोला और अपने हिसाब से प्रकृति का दोहन किया। मनुष्य की जरूरतों को साधनों और उत्पादनों द्वारा तय किया गया। इसके बावजूद मनुष्य के जीवन और उसके परिवेश में वह सार्थक बदलाव नहीं आ सका। इस तरह एक अलगाव पैदा हुआ। इस अलगाव ने मनुष्य को चेतना के स्तर पर झकझोर दिया और उसकी तड़फड़ाहट अभिव्यक्ति और

जीवन के स्तर पर आंदोलन का रूप ग्रहण किया। प्रकृति पर मशीनी वर्चस्व पूरी सभ्यता पर संकट के रूप में उभरा और इस संकट की सर्वाधिक चिंता और दुःख कविता ने दर्ज किया।

एक तरह से यह आंदोलन यंत्र और प्रकृति के बीच का झगड़ा था। मानवीय सभ्यता के विकास में मशीन की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन प्रकृति बनाम यंत्र में यंत्र की अतिशयता को बढ़ावा भी नहीं दिया जा सकता। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, "प्रकृति और यंत्र के द्वंद्व में कविता ने सदैव प्रकृति का पक्ष लिया है।"[5]

अगर आधुनिक सभ्यता के विकासात्मक इतिहास पर दृष्टि डालें तो जहाँ एक तरफ एक बड़ा वर्ग औद्योगिकरण के प्रत्येक रूप का स्वागत कर रहा था, क्योंकि इससे उसे नई उपभोग सामग्री मिल रही थी, तो वहीं एक दूसरा वर्ग लगातार ऐसा रहा है जो इसे संकट के रूप में देखता है।

निश्चय ही इस दूसरे वर्ग में स्वछंदतावादी साहित्यकारों और दार्शनिकों की एक बड़ी संख्या है। पश्चिम में रूसो, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, फ्लावेयर, तोल्स्तोय आदि तो भारत में सभी छायावादी रचनाकारों जिनमें प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला आदि का नाम लिया जा सकता है।

इस संदर्भ में निर्मला जैन ने लिखा है कि "इस वातावरण की घुटन से त्रस्त संवेदनशील साहित्यकारों ने या तो शहरी कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में आश्रय ढूँढा या मध्ययुगीन रोमानी गाथाओं में या फिर अपने मन के रहस्यमय कल्पना लोक में।"[6] लेकिन साहित्य इतिहास के प्रत्येक युग में प्रकृति अभिव्यक्ति के प्रत्येक माध्यमों में रही है। मनुष्य के भिन्न गुणों और रूपों की तरह प्रकृति के भी विभिन्न चरित्र हैं, जो मनुष्य से तादात्म्य स्थापित कर के सृजन में बने रहते हैं। रोमानी कविता में प्रकृति का सीधा प्रवेश होता है क्योंकि रागात्मक वृत्ति की उद्भावना में प्रकृति के नाना रूपों का योगदान रहता

---

[5] रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'कविता का पक्ष', पृष्ठ संख्या -61

[6] संपादक-पुष्पा भारती, 'धर्मवीर भारती की साहित्य साधना', पृष्ठ संख्या-86

है। इस तरह कविता में प्रकृति आलंबन, उद्दीपन, उपमान, पृष्ठभूमि, प्रतीक, अलंकार, उपदेश, दूती, बिम्ब-प्रतिबिंब, मानवीकरण, रहस्य तथा मानव भावनाओं के आरोपण इत्यादि रूपों में विद्यमान रही है।

ऋग्वेद में ही उषा की कल्पना एक कुमारी बाला के रूप में करते हुए सूर्य को उसका प्रेमी बताया गया है। आदि कवि बाल्मीकि के यहाँ प्रकृति का रोमांचकारी प्रभाव मिलता है। अपभ्रंश के परवर्ती युग में कवियों ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति के कई चित्र उपस्थित किये हैं। रोमानी भावों के उद्दीपन में प्रकृति की भूमिका प्रत्येक युगों में रही है।

कवि बब्बर का एक चित्रण देखिए-

"तरुण-तरणि तवई धरणि, पवण बहइ खरा।
लग्ग णहिं जल बड़ मरुथल, जल-जिअण-हरा।
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ हम, इकलि बहू।
घर णहिं अपि सुणहि पहिला ! मन इछइ कछु।।"

नायिका अपने प्रेमी से दूर है। गर्मी के महीने में ताप से जली जा रही है और ऐसे में वह किसी के शीतल स्पर्श की कामना कर रही है।

आदिकाल में देखें तो वहाँ प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन और उपमान के रूप में मिलता है। रासो ग्रंथों में प्रकृति के उपमानों के द्वारा सौंदर्य निरूपण हुआ है तो वही संयोग-वियोग की अनुभूतियों के उद्दीपन के रूप में ऋतुओं का वर्णन किया गया है।

चंदबरदाई की पंक्तियाँ हैं-

"भादबऊ बरसई छइ मगहर गंभीर। जल-थल महियल सहू भयी नीर।

जाणे सरवर उलटई। एक अंधारी बीजखी बाया।।

सूनी सेज विदेश पिआ। दोई दुख नाल्ह क्यूँ सइहणा जाई।"

मैथिल कोकिल विद्यापति ने तो प्रकृति के सौंदर्य को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। नारी के सौंदर्य को प्रकृति से सुसज्जित करने की कला में विद्यापति का कोई विकल्प नहीं है। वे प्रकृति के विभिन्न रूपों को विभिन्न अलंकारों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसे-

"पीन पयोधर दूबरी गता, मेरु उपजल कनक-लता।

× × × ×

सुंदर वदन चारु अरुलोचन, काजर रंजति भेला।

कनक-कमल माझ काल भुजंगिनी, श्रीयुत खंजन खेला।।"[7]

ऐसे ही उद्दीपन के रूप में सुंदर चित्र देखिए-

"फुटल कुसुम नव कुंज कुटीर बन, कोकिल पंचम गाबे रे।

मलयानिल हिम सिखर सिधारल, पिया निज देश न आबे रे।।"[8]

भक्तिकाव्य में प्रकृति के सभी रूपों के दर्शन होते हैं। मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत में प्रकृति वर्णन को पूर्ण प्रश्रय दिया है।

केशवदास जिनकी गणना भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों में की जाती है। केशव जिनको 'कठिन काव्य का प्रेत' तक कहा जाता है। उनके यहाँ भी प्रकृति के संपूर्ण उपादानों का उल्लेख मिलता है। एक उदाहरण देखिए-

---

[7] रामवृक्ष बेनीपुरी, 'विद्यापति पदावली', लोकभारती प्रकाशन, सातवाँ संस्करण: 2016, पृष्ठ संख्या-39

[8] वही, पृष्ठ संख्या-62

"केसव सरिता सकल मिलित सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तर तरबर सोहैं।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुं ओरन।
मन भावन कह भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन।
इहि रीति रमन रमनी सकल, लागे रमन रमावन।
प्रिय गमन करन की को कहै, गमन सुनिय नहिं सावन।।"

रीतिकाल का प्रमुख विषय शृंगार होने के कारण इस युग में प्रकृति-चित्रण को और भी अधिक प्रश्रय मिलना स्वाभाविक है। भारतीय रोमानी परंपरा में रीतिकाल का प्रमुख स्थान है। रोमानी भावों की स्वच्छंद उद्भावना इस समय में प्रमुखता से होती है, जिसके केंद्र में स्त्री-पुरुष सीधे-सीधे आते हैं। प्रकृति का आधार लेकर रोमानी भाव अपनी संपूर्णता को प्राप्त करते हैं, इसलिए रोमानी परंपरा में रीतिकाल भले ही शिल्प के स्तर पर जकड़ा हुआ है लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर पर सभी सीमाओं को तोड़ता है। इस समय में रचनाकारों ने प्रकृति को किस रूप में उकेरा कुछ महत्त्वपूर्ण कवियों के उदाहरण से देखते हैं-

"सघन कुंज-छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर।
मन ते ह्वै जतु अजौ ह्वै, उहि जमुना के तीर।।"[9]

बिहारी ने यद्यपि जायसी की भांति क्रम से ऋतु वर्णन नहीं किया फिर भी षड्ऋतु वर्णन उनके दोहों में अद्भुत सौंदर्य के साथ हुआ। शीतल मंद सुगंध समीर बिहारी के लिए विशेष आकर्षण है। वसंत ऋतु में

[9] 'बिहारी सतसई' (भाग-01) बिहारी, संपादक-देवेन्द्र शर्मा, पृष्ठ संख्या-38

मंद गति हवा नवोढ़ा के रूप में- जहाँ पुष्प पराग के वस्त्रों को धारण कर स्वेद रूपी मकरंद से सनी नवोढ़ा रूपी हवा मंद-मंद गति से चली आ रही है-

"लपटी पुहुप पराग पट, सनी स्वेद मकरंद।
आवति, नारि नवोढ़ लौं सुखद ऋतु वायु गति मंद।।"

कवि पद्माकर के काव्य में प्रकृति वर्णन की एक झलक-

"कुलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
× × × ×
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में, बागन में बगरयो बसंत है।"

ऐसे ही आधुनिक युगीन काव्य में प्रकृति की छटा का चित्रण अतिसूक्ष्मता, सरसता एवं विशदता के साथ हुआ है। विशेषतः छायावादी काव्य तो प्रकृति के वैभव से भरा हुआ है। जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत प्रकृति की अंतरंगता को चित्रित करने वाले प्रमुख कवि हैं। पंत तो प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में प्रतिष्ठित ही हैं। प्रसाद के काव्य में प्रकृति की छटा देखिए-

- "उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी-सी उदित हुई;
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।"[10]
- "सिंधु सेज पर धरा बधू अब, तनिक संकुचित बैठी-सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए-सी ऐंठी-सी।"[11]

[10] जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', 'आशा' सर्ग, पृष्ठ संख्या-19

• "नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;

खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।"[12]

पंत के काव्य में तो प्रकृति और भी रोमांचित करती है। इनके यहाँ जीवन की साधारणता में प्रकृति जरुरी हस्तक्षेप करती है। मनुष्य का सीधा सरोकार जुड़ता है। सभी साग-सब्जियाँ, फूल-फल जो मनुष्य की दैनिक जरुरत है। इनकी कविताओं में उसी रूप में जीवंत हो उठा है। यथा-

"महके कटहल मुकुलित जामुन, जंगल में झरबेरी झूली

फूले आड़ू,नींबू, दाड़िम, आलू, गोभी, बैगन, मूली

पीले मीठे अमरूदों में अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ीं

पक गए सुनहले मधुर बेर, अंवली ने तरु की डाल जड़ी,

लहलह पालक, महमह धनिया, लौकी औ सेम फली फैली

मखमली टमाटर हुए लाल, मिरचों की बढ़ी हरी थैली"[13]

किसानी जीवन का पूरा दृश्य साकार हो उठा है। ये ऐसे दृश्य हैं जो गृहस्थ जीवन को रोमांचित करती है और किसानों के लिए तो दुनिया की सबसे खुबसूरत चीजों में यही एक है। पूरी धरती जिससे खिल जाती हो ऐसे दृश्य अब कविताओं में कहाँ मिलती? एक उदाहरण-

"रोमांचित सी लगती वसुधा, आई जौ, गेहूँ में बाली।

अरहर सनई की सोने की, किंकिनियाँ है शोभाशाली।

उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली-पीली।

लो हरित धरा से झाँक रही, नीलम की कलि तीसी नीली।।"[14]

---

[11] वही, पृष्ठ संख्या-19

[12] वही, 'श्रद्धा-सर्ग', पृष्ठ संख्या-29

[13] सुमित्रानंदन पन्त, 'ग्राम्या', 'ग्राम श्री' कविता, पृष्ठ संख्या-27

मनुष्य के प्रत्येक भावों के साथ प्रकृति कैसे जुड़ती है, ये कविताओं के माध्यम से जान सकते हैं। व्यक्ति विशेष के मनोभाव और स्थितियाँ-परिस्थितियाँ प्रकृति से कैसे जुड़ती हैं? मनुष्य की करुणा में, व्यथा में प्रकृति का रूप महादेवी वर्मा के यहाँ देख सकते हैं-

"अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप होलें,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो लें,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत-शिखाओं के निठुर तूफान बोले।।"[15]

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' शक्ति, सौंदर्य और प्रकृति आवेश के कवि हैं और उनकी कविता में स्वच्छंदता की चेतना अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। प्रकृति का अत्यंत सशक्त चित्र 'राम की शक्तिपूजा' में उद्घाटित हुआ है-

"है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल।"[16]

आकाश अंधकार उगल रहा है, हवा का चलना रुका हुआ है, पृष्ठभूमि में स्थित समुद्र गर्जन कर रहा है, पहाड़ ध्यानस्थ है और मशाल जल रही है। इससे जो परिवेश निर्मित हो रहा है, वह भयावह है। प्रकृति

[14] सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली, (भाग-2) राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-204
[15] http://www.kavitakosh.org/kk/जाग_तुझको_दूर_जाना_/_महादेवी_
[16] संपादक-रामविलास शर्मा, निराला, 'राग-विराग', पृष्ठ संख्या-93

द्वारा युद्ध से उत्पन्न भय को मूर्त किया गया है। इस तरह यदि जयशंकर प्रसाद के काव्य में हिंदी स्वच्छंदतावाद की प्रस्तावना मिलती है, तो निराला का काव्य उसकी प्राण प्रतिष्ठा करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

उपरोक्त विवेचन और उदाहरण से यह स्पष्ट है कि प्रकृति अपने सभी रूपों में मानवीय जीवन से सरोकार रखती है। समय की तेजी से सभी चीजों में बदलाव संभव है लेकिन प्रकृति और मनुष्य का साथ हमेशा किसी-न-किसी रूप में रहेगा। छायावाद के बाद की कविताओं के स्वर सामाजिक और राजनीतिक हस्तक्षेप से जरूर बदले हैं, लेकिन कविता भाव और प्रकृति से दूर हो गयी हो ऐसा नहीं है। चाहे किसी भी वाद से जुड़े रचनाकार हो, वे अपने परिवेश की निर्मिति और भावों की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का सहारा लेते ही हैं। लेकिन बात जब मानवीय जीवन के उन क्षणों की हो जिस में वह बेसुध होकर ऐसे लोक में विचरता हो जहाँ उसके लिए सब सुंदर और सुखद हो। जब वह दुनिया के भीड़ से निकल कर किसी से एकात्म हो गया हो, ऐसे में प्रकृति का रूप उस व्यक्ति के लिए वरदान होती है।

रोमानी हिंदी कविता ऐसे ही लोक और मनुष्य के उस भाव की अभिव्यक्ति है जिसमें वह अकुण्ठ भाव से प्रणय का गायन करता है और अपने निजी जिंदगी को बिना किसी रहस्यवादिता के प्रगट करता है। चूंकि शोध के केंद्र में धर्मवीर भारती हैं इसलिए सीधे उनकी कविताओं में प्रकृति के स्वछंद रूप को देखते हैं जो आधुनिक मनुष्य के मुहावरें में व्यक्त हुए हैं-

“सूरज और सितारे ठंडे
राहें सुनी
विवश हवाएँ
शीश झुकाये

खड़ी मौन है

बचा कौन है?"[17]

निराशा भरा मन प्रकृति को कैसे देखता है? सूरज, सितारे, राहें, हवाएँ जब सभी मौन हो गए हो तो फिर मनुष्य क्या करे? जिनकी सक्रियता से मनुष्य संचालित होता है और जब उनका साथ भी छूट जाए तो फिर क्या बचता है।

'तुम्हारे चरण' शीर्षक कविता में इसके उलट प्रेमी और हर्षित मन प्रकृति को कैसे देखता है-

"ये शरद के चाँद-से उजले धुले से पाँव,

मेरी गोद में !

ये लहर पर नाचते ताज़े कमल की छांव

मेरी गोद में !

दो बड़े मासूम बादल देवताओं से लगाते दाँव

मेरी गोद में !"[18]

'चैती-तीन टुकड़े' का राग-रंग भारती के अंतर्मन का वह भाव व्यापार है जिसमें प्रकृति की लय का आदिम लास्य-नर्तन है। खंडवा जाते ट्रेन में प्रकृति पुकारती है-यह पुकार भारती सुन लेते हैं। जबकि इधर के ज़्यादातर कवि पीड़ा मवाद-अनास्था की कविता लिखकर हाथ-पांव छोड़े बैठे हैं। प्रकृति-लय से वंचित हो कर वे कविता में 'वाद' लिखते हैं - कविता नहीं लिखते। भारती की काव्य-यात्रा साक्षी है कि जूहीमाल की कलियाँ, दहके पलाश देखकर वे झूम उठते हैं। सेनापति और निराला दोनों की कसक यहाँ पूरी होती है।

---

[17] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-02

[18] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-03

“अधखुल ये, व्याकुल ये दो कँपते होठ

रह रह दहकें जैसे फूल दो पलाश के

कटावदार

टेसू कैसे फूले चन्दन की डार?

बन बन में उड़ी महक आग की

ओ मेरे प्यार ?”[19]

भारती की प्रकृति संबंधी कविताओं को पढ़कर मन गंध से भर जाता है- झरते फूलों की गंध से भरा पाठक एक ऐसी तृप्ति पाता है कि उस सुख का बयान नहीं किया जा सकता। इनमें प्रेमानुभूति के साथ प्रकृति की कोमलता मिलकर एक आकर्षक बिंब प्रस्तुत करते हैं।

कुछ उदाहरण-

01. ‘मुँह-अँधेरे बौर की महक

और आँगन में जाड़े की बतियाती

दोपहरें –

ख़त्म किताब की तरह मैंने बंद कर दी।’[20]

02. “रात-रात जागी निंदारी आँखों को कड़ुआता

अनियारा, सबेरा वसंत का

अब भी दुबका है कहीं मेरी इन पलकों तले

---

[19] धर्मवीर भारती, ‘सपना अभी भी’, पृष्ठ संख्या-16

[20] धर्मवीर भारती, ‘सपना अभी भी’, ‘आखिरकार’, पृष्ठ संख्या-56

जो फिर थक कर कड़ुवा आई हैं”[21]

03. “बचा है सिर्फ़

कच्चे रास्ते के ठीक बीचोबीच अब भी राख का धब्बा

किसी फागुन

जहाँ यों ही कभी मैंने

नीम की पीली झरी पत्तियों की ढेरी जलायी थी।”[22]

प्रकृति की सुंदरता और उसकी नीरवता को व्यक्त करती हुई भारती की भाषा जिस रोमानियत को व्यक्त करती है, उसका आधार केवल कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि मन की अतल गहराईयों से निकली अनुभूतियाँ हैं जो प्रकृति के साथ एकाकार होती है।

इस तरह हम पाते हैं कि प्रकृति कविता के एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में हमेशा रही है। कविता यात्रा के माध्यम से प्रकृति के विभिन्न रूपों को हमने देखा, छायावाद ने प्रकृति को उसकी पूर्णता में, विस्तार में, गहराई में प्रतिष्ठित किया तो आगे के कवियों ने प्रकृति को मानवीय जीवन के अत्यंत करीब लाकर खड़ा किया। लेकिन थोड़ा और आगे चलकर कविता पर एक महानगरीय शहरी आतंक छाने लगा और प्रकृति से अनुप्रेरित होकर लिखना एक गँवारू, रोमांटिक बात समझी जाने लगी। दूसरी ओर विचारधारा की आक्रमक शब्दावली एक रूढ़ि बन कर कविता पर छाने लगी। भारती खुद चिंतित होकर ‘वसंत के बिना’ लिखते हैं कि “आखिर क्या हुआ? क्या हिंदी के काव्य संसार में अब आम नहीं बौराते? क्या डालें फल-फूल से नहीं लदतीं, क्या खट्टी-मिट्ठी खुशबुएँ दोपहर की हवा में बहकर

[21] वही, ‘कोई और तुम’, पृष्ठ संख्या-54

[22] वही, ‘शेष’ कविता, पृष्ठ संख्या-33

नहीं आतीं? या आज भी यह सब होता है पर कवि का मन कहीं सहज रसग्राही नहीं रहा। ...पर इतना जरूर स्पष्ट है कि हिंदी कविता में इधर कितने ही वर्षों से वसंत ने आना बंद कर दिया है।"[23]

1.1.2 मानवीय सौंदर्य और प्रेम :

किसी भी रोमांटिक कवि की कविता के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि रोमानी कविता में तीन प्रमुख तत्वों- प्रकृति-सौंदर्य, मानवीय-सौंदर्य और प्रेम का सुंदर समन्वय विद्यमान रहता है। इन तीनों तत्वों का परस्पर ऐक्य भाव ही रोमांटिक कविता को उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित करता है। मानव सौंदर्य विशेषकर नारी सौंदर्य के संबंध में यह तथ्य सर्व प्रचलित एवं सर्वमान्य है कि जिस नारी में जितना अधिक सौंदर्य होगा, उसके प्रति प्रेमी के मन में प्रेम का भाव भी उतना ही तीव्र और गहन होगा, क्योंकि सौंदर्य ही प्रेम की उत्स भूमि होता है। सौंदर्य और प्रेम की भावाभिव्यक्ति के लिए कोमल भावनाओं का कवि प्रकृति के अनेकानेक उपादानों और स्थूल तथा सूक्ष्म क्रिया-व्यापारों का सहयोग लेता रहा है, जिसकी चर्चा कर चुके हैं।

सौंदर्य प्रकृति में है और मनुष्य के मन में भी। उसकी अनुभूति व्यक्तिगत भी होती है और समाजगत भी। सौंदर्य इंद्रियबोध तक सीमित नहीं है, उसकी सत्ता मनुष्य के भावजगत और उसके विचारों में भी है। सौंदर्यबोध की जड़ में दार्शनिक दृष्टियों, विचारधाराओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जो हमें जीवन को देखने का नजरिया देती है; जो भाववादी और भौतिकवादी चेतना से भी संबद्ध हो सकती है। डॉ. मुकेश गर्ग के अनुसार, "शोषकों के सौंदर्य-मूल्यों को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना और श्रम-सौंदर्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखना, साहित्य और कलाओं में सामाजिक जीवन की समस्याओं के प्रति

[23] धर्मवीर भारती, 'शब्दिता', 'वसंत के बिना' निबंध, पृष्ठ संख्या-17

उदासीनता और कला के रूपवादी सवालों पर विशेष बल भाववादी सौंदर्य-बोध का विशिष्ट रूप है। इसके विपरीत भौतिकवाद इस संसार को अपने चिंतन का मुख्य विषय मानता है; सामाजिक जीवन और उसकी समस्याएँ उसकी चिंता के केंद्रीय मुद्दे हैं।"[24]

रोमानी कविता का सौंदर्यगत स्रोत यही भाववादी-सौंदर्य-बोध है जिसमें 'रूप' प्रमुख है। आगे हम भाववादी-दर्शन की चर्चा विस्तार से करेंगे।

इस तरह हम पाते हैं कि युग-स्थितियों के निरंतर बदलते रहने से सौंदर्य के मान भी बदले हैं। आदिकाल के सौंदर्य की तुलना में मध्यकालीन सौंदर्यबोध अलग है तो वहीं आधुनिक दृष्टि और ज्यादा भिन्न है क्योंकि बदलते सामाजिक कारक इस को प्रभावित करते हैं।

मध्यकाल की बात करें तो मध्यकाल के पूर्व भाग भक्तिकाल में जहाँ भाववादी सौंदर्य दृष्टि होने के बावजूद वह जीवन-जगत से खुद को गहराई से जोड़ा हुआ है। आध्यात्मिक पलायन के बावजूद यथार्थवादी मूल्यों से ओतप्रोत है, वहीं उत्तर मध्यकाल यानी रीतिकालीन काव्य सामंती मानसिकता, अभिजात्यवादी सांस्कृतिक अभिरुचियों से परिचालित, दरबारों से संबद्ध राजाओं की तृप्ति के लिए लिखा गया काव्य है।

आधुनिक काल की दहलीज पर सौंदर्य की दृष्टि नैतिकता आधारित रही है तो छायावाद तक आते-आते स्वरूप बदला है। जहाँ प्रकृति की ही भाँति कविता में नारी की भी प्रधानता दिखाई पड़ती है। द्विवेदी युगीन आर्यसमाजी नैतिकता क्षीण होती है और प्रकृति के बीच ही छायावादी कवि को नारी के नैसर्गिक रूप का दर्शन होता है। छायावादी कविता में प्रेम और सौंदर्य को जो प्रधानता मिली वह अपूर्व

[24] डॉ. मुकेश गर्ग, 'सौंदर्य दृष्टि का दार्शनिक आधार', कनिष्का पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या-17

है। यहाँ तक कि छायावाद को सामान्यतः प्रेम और प्रकृति-सौंदर्य का काव्य ही समझा गया। इसमें पहली बार स्त्री और पुरुष के बीच व्यैक्तिक स्वछंद प्रेम का अभ्युदय हुआ।

प्रसाद की कामायनी नारी के उस सौंदर्य की खोज है जो उस के मास-मज्जा में नहीं आत्मा में बसती है जो वासना का नहीं अर्चना का विषय है। प्रसाद ने 'श्रद्धा' को इतने प्रेम में डूबकर अनुभूति की सूक्ष्मता से गढ़ा है कि वह अद्वितीय सौंदर्य का प्रतिमान बन गई है। रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं कि, "श्रद्धा का रूप वर्ण अत्यंत ऊँचें धरातल की कविता है और उसे हम कामायनी का ही नहीं, प्रत्युत समग्र विश्व के काव्य का अत्यंत उज्ज्वल अंश कह सकते हैं।"[25]

श्रद्धा का सौंदर्य देखिए जो परागों से विरचित प्रतिमा है जो मधु का अवलंब लेकर खड़ी है-

"कुसुम कानन-अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार,

रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।"[26]

धर्मवीर भारती की पहले दौर की कविताओं में प्रेम अपने अलौकिक और आदर्श रूप में उपस्थित है। प्रेम और सौंदर्य को उसकी कल्पना में चित्रित करने वाली कविताओं में 'कवि और कल्पना', 'यह दर्द', 'बरसाती झोंका', 'चुंबन', 'तुम्हारे पांव मेरी गोद में' आदि प्रमुख है। जिनमें रोमानी आवेग चरम पर है। प्रेमिका के पांव को चाँद की तरह उज्ज्वल और ताजे कमल की छाँव के समान देखने वाली दृष्टि का सौंदर्य-बोध देखिए-

"ये शरद के चाँद से उजले धुले-से पाँव,

मेरी गोद में।

[25] रामधारी सिंह, 'कामायनी:दोषरहित-दूषणसहित', पृष्ठ संख्या-20

[26] जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', 'श्रद्धा-सर्ग', पृष्ठ संख्या-29

ये लहर पर नाचते ताज़े कमल की छाँव,

मेरी गोद में।"[27]

यही नहीं इन पाँवों को 'ये बड़े सुकुमार, इनसे प्यार क्या?/ये महज आराधना के वास्ते' कहकर कवि सौंदर्य और प्रेम में जिस अलौकिकता का समावेश करता हैं वह प्रेम की आदर्श स्थिति की परिचायक है। 'प्रार्थना की कड़ी' कविता में नायिका का शरीर वैराग्य का संदेश देता हुआ पूजा-सा जान पड़ता है-

"प्रात सद्यःस्नात
कंधों पर बिखेरे केश
आँसुओं में ज्यों
धुला वैराग्य का संदेश
चूमती रह-रह
बदन को अर्चना की धूप
यह सरल निष्काम
पूजा-सा तुम्हारा रूप"[28]

यहाँ रूप वर्णन और प्रेम दोनों रोमानी स्तर पर वर्णित है। रोमानियत में ही प्रेम पवित्रता और पूजा के स्तर को छूता है। प्रेमिका की उदासी को भी सौंदर्य की निगाह से देखना धर्मवीर भारती के रोमानी-बोध को उजागर करता है। इस कड़ी की दो कविताएँ 'उदास तुम' और 'उदास मैं' उल्लेखनीय हैं-

"तुम कितनी सुंदर लगती हो

जब तुम हो जाती हो उदास।

ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खंडहर के आसपास

मदभरी चाँदनी जगती हो।"[29]

---

[27] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-04

[28] वही, पृष्ठ संख्या-05

[29] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-07

यहाँ गुलाबी दुनिया से तात्पर्य स्वप्नलोक से मालूम होता है। आरंभिक दौर में कवि प्रेम की पावनता, अलौकिकता की ही कामना करता है। लेकिन आगे चलकर धर्मवीर भारती शारीरिक प्रेम की महत्ता को भी स्वीकार करते हैं जो उनके प्रेम और सौंदर्य के आधुनिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। 'ठंडा लोहा' संग्रह जिसका सशक्त उदाहरण है। जिस संकलन के लिए डॉ. रघुवंश ने कहा है, "इस संकलन का मूल स्वर रूपासक्ति, प्रणयाकांक्षा, भावोल्लास से लेकर प्रेम की निष्फलता, विवशता, निराशा, अवसाद के अनेक भाव स्तरों को व्यंजित करता है।"[30] धर्मवीर भारती के यहाँ सौंदर्य और प्रेम के सभी प्रतिमान रोमानी है, इसमें कोई संदेह नहीं।

1.1.3 भाववादी दर्शन :

रोमानी काव्य के एक और प्रमुख आधार स्रोत के रूप में आत्मवादी या भाववादी दर्शन को भी देखा जा सकता है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार "कांट को स्वच्छंदतायुगीन दर्शन का पिता माना जा सकता है। उनका सबसे बड़ा कार्य था-यूरोप की व्यक्तिवादी और समष्टिवादी चिंतन पद्धतियों का समन्वय।"[31] कांट के विचारों में स्वच्छंदतावादी आदर्शवाद को एक दिशा मिली। कांट की धारणा है कि हमें यहाँ ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करनी चाहिए जो सामान्य विश्व से भिन्न क्षेत्र में भ्रमण करता हो "उसने आत्मबोध के द्वारा यह स्वतः सिद्ध मान लिया है कि इस दूसरे विश्व के विषय में हम कोई बात जान नहीं सकते, फिर भी हम अपने को उसके पूर्वानुमान में सतत लिप्त पाते हैं। इस प्रकार हम आत्मभाव की कल्पना तो करते हैं पर इससे अवगत नहीं रहते। स्वच्छन्दतावादियों ने इस सर्वतिशायी

---

[30] रघुवंश, 'भारती का काव्य', पृष्ठ संख्या-12

[31] नंददुलारे वाजपेयी, 'नया साहित्य: नए प्रश्न', पृष्ठ संख्या : 77-78

आत्मबोध की एकता को आत्मा के पूर्वानुमान के साथ, जिसको वे जानते नहीं पर कल्पना कर सकते हैं, लिया और इसप्रकार इन के सम्मिलन से स्वच्छंदतावादी आत्म (self) का निर्माण किया।"[32]

रोमानी या स्वछंद कविता में कल्पना की अधिकता इसी के कारण संभव हुई। आत्मवादी या भाववादी दर्शन के प्रमुख हस्ताक्षर जर्मनी के दार्शनिक हेगेल और शिलर हैं। हेगेल उन दार्शनिकों में शीर्ष पर हैं, जिनके अनुसार "पूरा विश्व आत्मतत्त्व की अभिव्यक्ति है।"[33]

उन्होंने सामुदायिक विकास की चरम परिणति के रूप में राज्य को देखा और उसके निमित्त व्यक्ति को समर्पित कर देने की बात की, क्योंकि वही नैतिकता का साकार रूप है। इतिहास एक संपूर्ण की ओर अग्रसर होने की गाथा है। यह एक सतत बदलाव तथा शाश्वत विकास की प्रक्रिया है। ठीक वैसे ही जैसे बादल- जिसका अवसान नहीं होता है, वह सिर्फ बदलता है।

रोमांटिक चिंतकों ने बुद्धि-वर्धित ज्ञान के स्थान पर संज्ञान को महत्त्व दिया है। तर्क और बुद्धि के बजाय भावना और आवेग को महत्त्व प्रदान किया। रूसो और बर्गसां का चिंतन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। बर्गसां ने बढ़ती हुई बौद्धिकता और तर्क के विरुद्ध सहजानुभूति की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित किया। "उनके मतानुसार तर्क जीवन को छिन्न-भिन्न कर देता है। निर्जीव पदार्थों के अध्ययन में तो इसका उपयोग है, किंतु चेतना का अध्ययन इससे नहीं हो सकता क्योंकि चेतना तो अविच्छिन्न प्रवाह है। तर्क का स्पर्श होते ही छुई-मुई सी झुलस जाती है। इसलिए चेतना के अक्षत ज्ञान का साधन सहजानुभूति ही है।"[34]

यही सहजानुभूति यूरोपीय रोमांटिक आंदोलन की प्रेरक शक्ति बनती है। इस मत के अनुसार सौन्दर्य की अनुभूति केवल प्रबल आवेग एवं आत्मविस्मृति के द्वारा ही संभव है। सौंदर्य प्राप्ति की अवस्था विवेक

---

[32] शिवकरण सिंह, 'स्वच्छंदतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन', पृष्ठ संख्या-20

[33] डॉ. ब्रज किशोर झा, 'प्रमुख राजनीतिक चिंतक' पृष्ठ-394

[34] डॉ.नगेंद्र, 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य खंड), पृष्ठ संख्या-152

या ज्ञान की नहीं बल्कि सहजानुभूति की अवस्था है। इसलिए कोलरिज, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियों ने सहजानुभूति को काव्य के लिए आवश्यक माना तथा बुद्धि और विवेक को कलात्मक अनुभूति में बाधक माना है।

इस संदर्भ में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'वनबेला' की पंक्तियाँ याद आती हैं। जहाँ ज्ञान के बरक्स या बाहरी वस्तुओं के एवज में 'आत्मा की आवाज' और हृदय के तत्त्वों को प्राथमिकता दी गयी है। ज्ञान की विडम्बना देखिए जो आत्मा की निधि को पत्थर कर देती है-

"...यह जीवन का मेला
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर
त्यों-त्यों आत्मा की निधि बनती पत्थर"[35]

स्वयं प्रसाद जी ने कामायनी में लिखा है कि-

"लो चला आज मैं छोड़ यही संचित संवेदन भार पुंज;"[36]

रामविलास शर्मा के शब्दों में "भाववादियों के अनुसार वैज्ञानिक भौतिकवाद में आस्था वाले लोग मनुष्य में आस्था खो देते हैं...वैज्ञानिक भौतिकवाद जगत के स्वरुप की व्याख्या नहीं करता है। (वे मानते हैं) ज्ञान का साक्ष्य चेतना के अन्दर होना चाहिए।"[37]

स्वयं ग़ालिब के यहाँ यह स्थिति है कि रूमानी सौंदर्य किस तरह चेतना के वापस आने पर गायब हो जाता है। वह सौंदर्य ख़्वाब में ही था-

"था ख़्वाब में ख्याल को तुमसे मुआमला

---

[35] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 'अनामिका-संग्रह', 'वनवेला' कविता

[36] जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', ईर्ष्या-सर्ग, पृष्ठ संख्या-78

[37] रामविलास शर्मा, 'आस्था और सौंदर्य', पृष्ठ संख्या-103

जब आँख खुल गयी न जियां था न सूद था।”[38]

इस तरह समय-समय पर कविता बुद्धिवाद का अतिक्रमण करके सहजानुभूति में ही अपने को ज्यादे जीवंत पाती है। वह आस्था और विश्वास के चासनी में घुलना चाहती है-

“दो और दो का जोड़-हमेशा चार कहाँ होता है,

सोच-समझवालों को थोड़ी नादानी दे मौला।”[39]

इस प्रकार सहजानुभूति पर आधारित यह भाववादी दर्शन रोमानी काव्य को प्रभावित करता है। इसको हम अंतर्दृष्टि भी कह सकते हैं। “इलियट ने दांते पर विचार करते हुए बहुत ठीक कहा है कि आधुनिक मनुष्य के पास सपने हैं, परंतु उसने वह अंतर्दृष्टि खो दी है जो किसी विराट कल्पना या विश्वास का निर्माण करती है। वस्तुतः इसके लिए जिस सामूहिक चेतना की आवश्यकता होती है, उसका आज नितांत अभाव है।”[40]

इस तरह हम पाते हैं कि वर्तमान में व्यक्ति के अहं ने सच्चाई को जिस तरह से टुकड़ों में पाने और पहचानने की कोशिश की है उससे समग्रता खंडित हुई है। सभी चीजों को देखने का दृष्टिकोण एकांगी हुआ है। ऐसे में रोमानी साहित्य संपूर्णता की तलाश का साहित्य मालूम पड़ता है; जो ज्ञान एवं विवेक के प्रतिपक्ष में खड़ा होकर एक बार फिर यह पुराने समय की आस्था, श्रध्दा एवं विश्वास को प्रतिष्ठित करना चाहता है।

1.2 हिंदी में स्वछंदतावाद संबंधी आधारभूत साहित्यिक मान्यताएँ :

---

[38] संपादक-अली सरदार जाफ़री, दीवान-ए-ग़ालिब, पृष्ठ संख्या-27

[39] http://kavitakosh.org/ गरज बरस प्यासी धरती पर फिर पानी दे मौला / निदा फ़ाज़ली

[40] केदारनाथ सिंह, ‘आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान’, पृष्ठ संख्या-35

आमतौर पर हिंदी स्वच्छन्दतावाद और उस पर पड़े प्रभाव को तीन दृष्टिकोणों से देखा जाता है। पहले दृष्टिकोण के अनुसार, हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य अंग्रेजी रोमांटिक रिवाइवल की भारतीय प्रतिछवि है। इस दृष्टिकोण के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं। सबसे पहली बात तो ये कि जब भारत सीधे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया तो वहाँ का काल और परिवेश कुछ कुछ हम पर छाने लगा। अंग्रेजी शिक्षा, मुद्रण यंत्र और ईसाई मिशनरियाँ जैसे कई तत्वों ने इसमें योगदान दिया।

दूसरा दृष्टिकोण यह कहता है कि इसकी जड़ें विदेशी जमीन पर नहीं है। यह हमारी परंपरा से ही निःसृत है। “यह हमारी काव्य परंपरा के प्राकृतिक विकास-क्रम से उपजा है।”[41]

तीसरा दृष्टिकोण जिसके प्रवक्ता अज्ञेय जी हैं । उनके अनुसार, “हिंदी पर (यूरोपीय) रोमांटिक काव्य के प्रभाव में भारतीय प्रतिध्वनि थी।”[42]

इन तीनों दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हम भिन्न रचनाकारों और आलोचकों को आगे बहस में शामिल करेंगे। हम जानते हैं कि औद्योगिकरण और मशीनी सभ्यता दोनों स्वच्छंदतावादी आंदोलन की पृष्ठभूमि में रही है। हालांकि पश्चिम के देशों में इसकी उपस्थिति अधिक थी। इसके अलावा औद्योगिक पूंजीवाद की सामयिक परिणति के रूप में 'व्यक्तिवाद' का उदय दोनों जगहों के स्वच्छंदतावाद की बुनियाद है। इसी के साथ कविता में प्रगीतात्मकता की भी शुरुआत होती है।

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने दोनों की परिस्थितियों में भी साम्यता देखी है। उनके अनुसार “जिस प्रकार रोमांटिसिज्म के पूर्व सुधारवाद और शास्त्रीय रूढ़ियों का बोलबाला था... हिंदी में द्विवेदी युग में भी यही परिस्थिति थी।”[43] यहाँ जाहिर तौर पर गुप्त जी द्विवेदी युग और अंग्रेजी के नवक्लासिकी में

---

[41] डॉ. नगेन्द्र, ‘छायावाद की परिक्रमा’, पृष्ठ संख्या-80

[42] अज्ञेय, ‘कवि-दृष्टि’, पृष्ठ संख्या-37

[43] गणपतिचंद्र गुप्त, ‘हिंदी साहित्य प्रमुख वाद एवं प्रवृतियाँ’, पृष्ठ संख्या-26

समानता देख रहे हैं। डॉ. नगेन्द्र ने भी इसका उल्लेख किया है कि छायावादी स्वच्छंदतावाद द्विवेदीयुगीन स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है।

जब भी हिंदी में स्वच्छंदतावाद या छायावाद का जिक्र होता है तो अंग्रेजी रोमांटिक काव्यधारा का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है। इस दिशा में अनेकों शोध और समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी गई। द्विवेदी युग में अंग्रेजी साहित्य का इतना व्यापक अनुवाद और अध्ययन हुआ कि भारतीय साहित्यकार उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। इस दृष्टि से श्रीधर पाठक का उल्लेख आवश्यक है। पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के 'द हरमिट', 'द डेजर्टेड विलेज' और 'ट्रेवेलर' का काव्यानुवाद तो किया लेकिन उस अनुवाद में अपनी परंपरा के योग से कितना बेहतर बनाया यह भी उल्लेखनीय है।

'द हरमिट' के 'एकांतवासी योगी' के रूप में काव्यानुवाद पर 22 मई 1888 के 'होमवार्ड मेल ऑफ लंदन' ने टिप्पणी की थी कि "इसने पूरब के आलंकारिक सजावों की जगह भारतीय मानस के हृदय का अनुराग व संवेदना प्रदान की थी।"[44]

इसी प्रकार 'द डेजर्टेड विलेज' के अनुवाद 'उजड़ग्राम' पर बालकृष्ण भट्ट ने मई 1889 ई. के 'प्रदीप' में लिखा था कि "इसमें ग्रंथकार की ओर से मिलाया गया भाग अधिक रसीला और माधुर्यपूर्ण है।"[45]

'एकांतवासी योगी' के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि "सहज प्रेम कथा को सीधी-सादी खड़ीबोली में अनुवाद के लिए चुनना मार्मिकता से युक्त होने के साथ-साथ पंडितों की बंधी हुई रूढ़ि से बाहर निकलकर अनुभूति के स्वतंत्र क्षेत्र में आने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"[46]

---

[44] श्रीधर पाठक, 'एकांतवासी योगी', पृष्ठ संख्या-50

[45] पूनमचंद्र तिवारी, 'द्विवेदी युगीन काव्य', पृष्ठ संख्या-257

[46] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ संख्या -326

इन अनुवादों से एक बात तो स्पष्ट है कि अनुवाद होने के बावजूद भी पूर्णतयाः अनुकरण नहीं है जैसा कि मान लिया जाता है। देश-काल के विभेद से अंतर आना स्वाभाविक है। हाँ मानवात्मा जो कि परंपरा और स्वच्छंदता का मूल स्रोत है, इसलिए वह सदैव समान बना रहता है।

भगवतीचरण वर्मा ने छायावादी कविता को रोमांटिक रिवाइवल से प्रेरित मानते हुए रवींद्रनाथ टैगोर की भूमिका को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि, "सुधारवाद और कट्टरता (महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके युग की कविताएँ) का अत्यंत नीरस कविता के मुकाबले रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता की परिपाटी ने जब हिंदी कविता में प्रवेश किया तब हिंदी कविता में रसात्मकता का समावेश हो सका। उस परिपाटी की नवीन कविता ही हिंदी में छायावाद नाम से जानी जाती है।"[47]

डॉ. देवराज ने भी 'छायावाद का पतन' में साफ-साफ लिखा है कि, "छायावादी काव्य रोमांटिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उससे समानता भी रखता है।"[48]

डॉ. नामवर सिंह ने स्वच्छंदतावाद और छायावाद के बीच संबंध पर विचार करते हुए लिखा है कि, "स्वच्छंदतावाद रोमांटिसिज्म का अनुवाद होते हुए भी छायावादी कविता का एक भाग बनकर ही रह गया तथा बाद में छायावाद ही रोमांटिक प्रवृत्ति का द्योतक बना।"[49] नामवर सिंह इस बात पर जोर देते हैं कि छायावादी कविताओं का अर्थ उन्हीं प्रकार की कविताओं से होता है, जिन्हें यूरोपीय साहित्य में रोमांटिक कविता की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि आचार्य शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द रोमांटिसिज्म के समान अर्थों में प्रयुक्त किया है। शुक्ल जी को अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के

---

[47] भगवतीचरण वर्मा, 'साहित्य के सिद्धांत और रूप', पृष्ठ संख्या : 113-114

[48] वही, पृष्ठ संख्या-21

[49] नामवर सिंह, 'छायावाद', पृष्ठ संख्या :14-15

स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता के दर्शन सबसे पहले श्रीधर पाठक में हुए। उन्हें वे "सच्ची और स्वाभाविक स्वच्छंदतावाद" के प्रवर्तक बताते हैं। परंतु उन्हें इस बात का गहरा दुःख भी है कि "तृतीय उत्थान" तक रवींद्र बाबू की "गीतांजलि" की धूम उठ जाने के कारण हिंदी कविता विदेश की अनुकृत रूढ़ियों और वादों में जा फँसी। इस तरह इने-गिने नए कवि स्वच्छंदता के मार्मिक स्वाभाविक पथ पर चले।

स्पष्टतः उनका इशारा छायावादी काव्य में यूरोपीय रोमांटिक कविताओं के प्रभाव की ओर है। शुक्ल जी सुमित्रानंदन पंत में शुद्ध स्वाभाविक स्वच्छंदतावाद (ट्रू रोमांटिसिज़्म) की संभावना देखते हैं। लिखते हैं कि, " 'पल्लव' के भीतर 'उच्छवास', 'आँसू', 'परिवर्तन' और 'बादल' आदि रचनाएँ देखने से पता चलता है कि यदि 'छायावाद' के नाम से 'वाद' न चल गया होता तो पंत जी स्वच्छंदता के शुद्ध स्वाभाविक मार्ग (ट्रू रोमांटिसिज़्म) पर ही चलते। उन्हें प्रकृति की ओर सीधे आकर्षित होने वाला, उसके खुले और चिरंतन रूपों के बीच खुलने वाला हृदय प्राप्त था।"[50]

अब यह देखना वाकई दिलचस्प होगा कि शुद्ध एवं स्वाभाविक स्वच्छंदतावाद की संभावना वाले कवि सुमित्रानंदन पंत अंग्रेजी रोमांटिसिज़्म और उसके प्रभाव के बारे में क्या सोचते हैं। पंत जी के अनुसार, "पल्लव काल में उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः शैली, वर्ड्सवर्थ, किट्स से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्य बोध और मध्ययुग की संस्कृति का बोध दिया है।"[51]

"छायावाद : पुनर्मूल्यांकन" नामक पुस्तक में पंत जी ने यूरोपीय रोमांटिक कविता के साथ-साथ नवीन जीवन मूल्यों के सशक्त अभिव्यक्ति की बात भी कही हैं। अपनी उक्त पुस्तक में इस बात की चेतावनी

---

[50] रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ संख्या-487

[51] सुमित्रानंदन पंत, 'छायावाद:पुनर्मूल्यांकन', पृष्ठ संख्या-38

भी दी हैं कि छायावाद को रोमांटिक काव्य तक सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति आँख मूँद लेना है। वे इसी मुख्य तथा मध्यवर्तिनी धारा के रूप में "राष्ट्रीय अन्तर्जागरण" की चेतना तथा वैश्व विकास के नए मूल्य के रूप-स्पर्श को वाणी देने की ओर गतिशील दिखते हैं।

हिंदी स्वच्छंदतावाद पर दूसरी दृष्टि इसके पाश्चात्य प्रभाव को या तो बिल्कुल नकार देती है, या फिर थोड़ा बहुत स्वीकार करती है। इसमें एक महत्वपूर्ण नाम आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का है। वे पाश्चात्य प्रभाव के आलोक में देखने वालों के लिए कहते हैं कि यह "विकृत मानसिकता की प्रतिक्रिया"[52] है।

उन्होंने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में इसका मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल के इस मत का खंडन किया है कि छायावादी काल में इस पर बांग्ला के माध्यम से यूरोपीय रोमांटिक आंदोलन का प्रभाव पड़ा। वे इसे राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार "इस आंदोलन ने भारतीय जनता के चित्त को बंधनमुक्त किया जिसकी प्रतिध्वनि तदयुगीन काव्यरूपों में हुई।"[53]

द्विवेदी जी के अनुसार जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया था- उसके पीछे भी तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।

वहीं नंददुलारे वाजपेयी "काव्य शैलियों में, अनुभूति और कल्पना के स्वरूपों और साहित्यिक निर्माण में...अंग्रेज कवियों से एक बड़ी हद तक समानता भी"[54] तलाशते हैं।

किंतु उनका मुख्य जोर इस बात पर है कि इसे "यूरोपीय रोमानी काव्य का पिछलगुआ"[55] मानना एक भारी भूल है। वे इसे भारतीय नवजागरण तथा राष्ट्रीय जीवन के संदर्भ में देखते हैं। उनके अनुसार यह

---

[52] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'विचार प्रवाह', (लेख-साहित्य की नई मान्यताएँ), पृष्ठ संख्या -182

[53] डॉ. प्रेमशंकर, 'हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य', पृष्ठ-91

[54] नंददुलारे वाजपेयी, 'नया साहित्य:नए प्रश्न', पृष्ठ संख्या-172

[55] डॉ. प्रेमशंकर, 'हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य', पृष्ठ संख्या -82

"राष्ट्रीय जागरण की प्रभाती ध्वनि" थी जिसमें अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का स्वर फूटा। वाजपेयी जी छायावादी कविता की स्वतंत्र सत्ता के समर्थक थे इसी कारण हिंदी के कुछ समीक्षकों द्वारा इसे "नवयुग के स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवाह का अंग मात्र मानने का विरोध"[56] करते हैं। डॉ. नगेन्द्र यूरोपीय और छायावादी दोनों को रोमानी कविता मानते हैं। दोनों में "जागरण और कुंठा का मिश्रण पाते हैं।"[57] इसके बावजूद छायावाद एक "सर्वथा भिन्न और काल" की सृष्टि के रूप में 'असफल सत्याग्रह' आंदोलन को देखते हैं। जबकि यूरोपीय रोमांटिक आंदोलन की पृष्ठभूमि में सफल फ्रांसीसी क्रांति थी। इस क्रांति के द्वारा "जनता की विजयिनी सत्ता ने समस्त जागृत देशों में एक नवीन आत्मविश्वास की लहर दौड़ा दी थी। फलस्वरूप वहाँ के रोमानी काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उसकी दुनिया अधिक मूर्त थी, उसकी आशा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उसकी अनुभूति अधिक तीक्ष्ण थी। छायावाद की अपेक्षा यह निश्चित ही कम अंतर्मुखी एवं वायवी था।"[58] हिंदी स्वच्छंदतावादी उभार के संदर्भ में डॉ. नगेंद्र के 'असफल सत्याग्रह' वाली बात पर सिर्फ इतना कहना है कि जब स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति पनप रही थी, तो वह समय हमारे जन-जागरण का समय था। राजनीति में जनता का सीधा हस्तक्षेप, गाँधी का पदार्पण इसी समय में हो रहा था। इस प्रकार यह उत्साह, बेचैनी और सृजन का काल था। इसमें कोई दो राय नहीं।

विजयदेव नारायण साही ने 'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' में छायावाद के साथ रोमांटिसिज़्म नाम चिपका देने का विरोध किया है। वे इसे "सत्याग्रह युग" का साहित्य मानते हैं। यूरोपीय रोमांटिसिज़्म की पृष्ठभूमि में क्रांति है, जिसकी विस्फोटक ज्वाला के समक्ष नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न छोटे और छिछले मालूम पड़ने लगते हैं। (ट्राटस्की के अनुसार) साही जी ने यह

---

[56] नंददुलारे वाजपेयी, 'नया साहित्य:नए प्रश्न', पृष्ठ संख्या -172

[57] डॉ. नगेंद्र, 'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ', पृष्ठ संख्या -20

[58] वही, पृष्ठ संख्या -20

दिखाया है कि “सत्याग्रह नैतिकता के उदात्तीकरण का एक ऐसा विराट प्रभामंडल है जिसके आगे सत्ता और शक्ति, क्रांति तथा क्रमिक विकास के प्रश्न गौण हो जाते हैं।”[59] दोनों में इसी फर्क को साही जी उल्लिखित करते हैं।

हिंदी स्वच्छंदतावाद को केवल पश्चिम का अनुकरण और अनुमोदन मान लेने को डॉ. प्रेमशंकर उसके इतिहास को नकार देने के समान मानते हैं। उनके शब्दों में “छायावाद युग के हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य को यूरोपीय रोमांटिसिज़्म विशेषतया अंग्रेजी रोमांटिक कविता के समानांतर रखकर देखा जाता है। पर दोनों में पर्याप्त अंतर है, क्योंकि उनके निर्माण में विभिन्न युगों और भूमियों की शक्तियाँ सक्रिय रही हैं।”[60]

इसी तरह कुँवरनारायण का कहना है कि, “सच यह है कि ‘छायावाद’ एक प्रकार का रोमांटिसिज़्म जरूर था लेकिन उसकी जड़ें मनुष्य के धार्मिक और रहस्यात्मक अनुभवों में थीं, न कि पाश्चात्य ‘रोमांसेज’ की परंपरा में।” उनके अनुसार “भारतीय रोमांटिसिज़्म के मूल में मध्ययुगीन भक्ति और सूफी-काव्य परंपरा का गहरा योग था। अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में थोड़ा बहुत अगर कोई उनके निकट आता था तो शायद विलियम ब्लेक न कि शेली, किट्स, बायरन, न वर्ड्सवर्थ ही।”[61]

तीसरा दृष्टिकोण अज्ञेय जी का है। इस दृष्टिकोण के अनुसार यूरोपीय रोमांटिक कविता का हिंदी काव्य पर प्रभाव पड़ा किंतु वह प्रभाव वस्तुतः “दूरागत भारतीय प्रतिध्वनि” भी थी। इसका आशय यह है कि कुछ भारतीय तत्त्वों ने यूरोपीय रोमांटिक आंदोलन को प्रभावित किया, फिर वही प्रभाव हिंदी कविता को प्रभावित करता है। अपने इस मत को सिद्ध करने के लिए अज्ञेय जी ने बताया कि अंग्रेजी रोमांटिक

---

[59] विजयदेव नारायण साही, ‘छठवाँ दशक’, पृष्ठ - 273

[60] डॉ. प्रेमशंकर, ‘हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य’, पृष्ठ-01

[61] कुँवर नारायण, ‘आज से पहले’, पृष्ठ-61

काव्य (जिसका प्रभाव हिंदी पर पड़ा) फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि देशों से प्रेरणा ग्रहण की। लेकिन स्वयं दोनों को पहले की देन काफी थी। उदाहरणार्थ रोमांटिक काव्य का बहुदेवतावाद यूनानी साहित्य का परिणाम नहीं था। क्योंकि यूनानी साहित्य तो 'क्लासिकल' बन चुका था और उसी के प्रतिरोध में रोमांटिक आंदोलन उभरा। यह बहुदेवतावाद पूर्वी एशिया की देन है। इसी तरह जर्मनी में ग्यएटे ने शकुंतला को संबोधन करके कविता लिखी अथवा रोमानिया में एमेनेस्कू ने कामदेव पर काव्य लिखा। अज्ञेय के मतानुसार जब अंग्रेजी रोमांटिसिज़्म पहुँचा तो हिंदी कवियों ने कालिदास को नयी दृष्टि से देखा। उन्हें दुबारा तलाश किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के लिए कालिदास की रचनाएँ प्रबंध काव्य भर थीं, किंतु रोमांटिक कवियों के प्रभाव में हिंदी स्वच्छंदतावादी कवियों ने कालिदास को नई दृष्टि से देखा। उन्हें नया युग व नई दृष्टि के संदर्भ में अर्थवत्ता प्रदान की। लेकिन यहाँ इसका भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है कि "पुष्करिणी" की भूमिका में वे भारतीय स्वच्छंदतावाद को "पश्चिम से प्रभावित व्यक्तिपरक दृष्टि का परिणाम" मानते हैं।

हमारे यहाँ व्यक्ति की परिकल्पना भी यूरोपीय स्वच्छंदतावाद से भिन्न थी। पश्चिम से भिन्न 'व्यक्ति' की परिकल्पना और अस्मिता की आकुलता के अलावा हिंदी स्वच्छंदतावाद की एक प्रमुख विशेषता उसकी क्रमिकता या निरंतरता है। जैसा कि हम जानते हैं कि अंग्रेजी रोमांटिक आंदोलन में लैटिन परम्पराओं के खिलाफ विद्रोह और नवक्लासिकल साहित्यिक परम्पराओं से अलगाव की बात रही है। लेकिन ऐसी बात हिंदी स्वच्छंदतावाद के संदर्भ में रीतिकाल और द्विवेदी युग के बारे में नहीं कही जा सकती है। "आचार्य शुक्ल की काव्य दृष्टि और आधुनिक कविता" वाले लेख में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के माध्यम से डॉ. केदारनाथ सिंह ने बताया है कि "रीतिकाल के बाद जो क्रांतिकारी परिवर्तन हिंदी कविता में घटित हुआ। आचार्य शुक्ल उसे काफी हद तक सहानुभूति देते थे, लेकिन उसे परिवर्तनवाद की संज्ञा नहीं देते हैं, क्योंकि रीतिकालीन परंपरा का विकास इसी देश की संस्कृत साहित्य

की परंपरा से हुआ था। अतः वे उससे यानी रीतिकालीन परंपरा से उस प्रकार के पार्थक्य की बात स्वीकार नहीं करते जैसा कि अंग्रेजी की स्वच्छंदतावादी कविता में अपनी पूर्ववर्ती कविता के साथ पाया जाता है। उसकी मान्यता है कि चूंकि स्वच्छंदतावाद से पहले की अंग्रेजी कविता पर लैटिन प्रभाव- जो एक विदेशी प्रभाव था - अधिक था, इससे वहाँ के रोमांटिक कवियों का उससे विद्रोह करना जायज था। पर देशी संदर्भ की उपज होने के कारण रीतिकाल के प्रति वैसा ही विद्रोह शायद हिंदी कवियों के लिए उचित नहीं।"[62]

इसी तरह कहा जाता है कि द्विवेदी युग की स्थूलता और इतिवृत्तात्मकता के खिलाफ ही हिंदी में स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ। मुझे इस संदर्भ में मलयज की टिप्पणी सही मालूम होती है जिसमें उन्होंने लिखा है कि "द्विवेदी युग ने एक ठोस वस्तुवादी धरातल प्रदान किया" और छायावादी स्वच्छंदतावादी कवि "उस धरातल से खड़े होकर भावनात्मक उड़ाने लीं और अपनी रचनात्मक शक्ति को केंद्र मानकर भाषा के रूप-गहन में मानसिक दिवास्वप्नमयता का तत्त्व भरा।"[63]

अगर हम क्रमिकता और निरंतरता की बात करें तो स्वच्छंदतावाद की तलाश तो "विल्हण की 'चौर पंचाशिका', हाल की 'गाहासतसई', 'ढोला मारु रा दुहा', 'संदेश रासक' आदि में भी की जा सकती है। जहां तक रीतिवादिता को तोड़कर स्वच्छंद होने की बात है उसके प्रमाण हमें रीतिमुक्त कवियों में मिल जाते हैं। यहाँ पर भी 'रीझना' का संवेग देखिए-

"रीझि सुजान सची पटरानी, बची बुधि बावरी हौ करि दासी।"

लेकिन यहाँ थोड़ी सजगता बरतने की आवश्यकता है। सबसे पहले यह कि स्वच्छंदतावाद सिर्फ मूल्यबोधीय परिकल्पना नहीं है, वह कालबोधीय भी है। दूसरे यह कि हिंदी स्वच्छंदतावाद की संरचना

---

[62] डॉ. केदारनाथ सिंह, 'मेरे समय के शब्द', पृष्ठ संख्या - 21

[63] मलयज, 'कविता से साक्षात्कार', पृष्ठ संख्या -146

में विशिष्ट तात्त्विक अवयव भी हैं, जिनकी उपस्थिति आधुनिक युगबोध की वजह से है। इसप्रकार एक पूर्वपीठिका के रूप में रीतिमुक्त कविता की स्वच्छंदता को याद तो किया जा सकता है, लेकिन इसकी भूमिका को बहुत आगे तक नहीं ले जाया जा सकता है। वैसे दिनकर जी तो यहाँ तक मानते हैं कि यदि घनानंद ने खड़ी बोली में कविता लिखी होती तो सरलता से वे छायावाद के पूर्वपुरुष मान लिए गए होते। रामधारी सिंह दिनकर से आगे बढ़कर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तो रीतिमुक्त कवि घनानंद से ही स्वच्छंदतावाद की शुरुआत मानते हैं। उपरोक्त विचारों से यह पता चलता है कि 'स्वच्छंदतावाद' की अवधारणा बहुत व्यापक है, विदेशी संदर्भ छोड़ भी दें तो भारतीय साहित्य के कई भाषाओं और क्षेत्रों में 'स्वच्छंदतावाद' के उभरने के कारण और तथ्य मिलते हैं। डॉ. प्रेमशंकर ने 'भारतीय स्वच्छंदतावाद और छायावाद' पुस्तक में इसकी गहरी पड़ताल की है। लेकिन 'स्वच्छंदतावाद' की व्यापक अवधारणा में एक तत्त्व प्रमुख दिखाई देता है वो है 'रोमानी-भावबोध'। इसी बोध से रोमानी रचनाओं का संसार निर्मित होता है।

खैर अनेक दृष्टियों के बीच ऐसे विवादों का होना लाज़िम है, स्वच्छंदतावाद से आगे की कविता यात्रा भी काफ़ी दिलचस्प है जिसमें रोमानी कविता नए अर्थ-संदर्भों के साथ उपस्थित होती है। धर्मवीर भारती जिसके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। नई रोमानियत की पृष्ठभूमि में धर्मवीर भारती के काव्य को देखना-परखना एक 'नई अर्थवत्ता' प्रदान करेगा, जिसकी विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में द्रष्टव्य है।

द्वितीय अध्याय

2. नई रोमानी हिंदी कविता का साहित्यिक वैशिष्ट्य और धर्मवीर भारती की कविता

2.1 गीति-रचना

2.2 आधुनिकता-बोध और रोमानी काव्य चेतना का द्वंद्व

<u>अध्याय-02</u>

नई रोमानी हिंदी कविता का साहित्यिक वैशिष्ट्य और धर्मवीर भारती की कविता

बुलेट ट्रेन की कल्पना को यथार्थ रूप देने वाले समय में किसी भी चीज के स्थायी और अपरिवर्तनशील बनाये रखने की चाहत संभव नहीं है। जिस समय और समाज में प्रतिक्षण बदलाव हो रहा हो वहाँ ठहरने में कौन सी भलाई है। सभी निरंतर बदल रहे हैं। ये कहना कि आधुनिक युग तलस्पर्शी परिवर्तनों का युग है। यह समय स्थायी साहित्य सृजन के लिए उपयुक्त नहीं है। दरअसल वर्तमान में किसी भी स्थायित्व की बात करना मजाक होगा। "यह तो सप्ताह की कविता, दिन की कविता, घंटे की कविता और क्षणों की कविता का युग है। अखबारों के समान कविता की जिंदगी भी घटती जा रही है। यह क्षणजीवी वादों और आंदोलनों का समय है। यह सत्य है कि काव्य-दिशा के प्रत्येक प्रत्यंतर का अपना महत्त्व होता है और इस के द्वारा मौसमी बदलाहट की सी ताजगी वातावरण में भर जाती है पर क्षणजीवी काव्य-दृष्टि दिशाहीनता की ही परिचायक कही जाएगी।"[64]

रोमानी कविता जो हिंदी कविता यात्रा में हमेशा से मौजूद रही है। जो अपने स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण स्वच्छंदतावाद से गहरा ताल्लुक रखती है। वह अपने उत्तरोत्तर विकास के साथ किस रूप में आती है? इसका वैसा अध्ययन नहीं हुआ। हम जानते हैं कि स्वच्छंदतावाद के उपरांत हमारे साहित्य की धारा राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा, प्रगतिवादी धारा, प्रयोगवादी तथा नई कविता आदि दिशाओं की ओर जाती है। इन विविध वादों द्वारा स्वच्छंदतावादोत्तर साहित्य का समग्र और निष्पक्ष अध्ययन नहीं किया जा

---

[64] डॉ.नरेन्द्रदेव वर्मा, 'हिंदी नवस्वच्छंदतावाद', पृष्ठ संख्या-55

सकता। यदि हम किसी युग के साहित्य का परीक्षण केवल वादीय दृष्टि से करते हैं तो उस युग की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ जो किसी वाद की सीमा में नहीं आती ओझल हो जाती है। ऐसी ही स्थिति में रोमानी कविता का उत्तरोत्तर भाग आता है जिसे या तो स्वच्छंदतावाद या फिर प्रयोगवाद और नई कविता के हवाले कर दिया जाता है। संकुचित सीमाओं में युग के समस्त साहित्य का विश्लेषण नहीं किया जा सकता, उसके लिए व्यापक दृष्टिकोण चाहिए।

हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्य के संबंध में हमने पाया कि यह नवीन भाव-बोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ था और इसका संबंध ऐसे युगबोध से था जो मूलतः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक था। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में तेजी से बदलाव के कारण अभिव्यक्ति के स्वर भी बदले जिसके फलस्वरूप स्वच्छंदतावादी कवियों की एकात्मकता, वैचारिक स्थिरता और भावनात्मक तीव्रता धीरे-धीरे खंडित हुई और इस तरह एक नए युगबोध की शुरुआत हुई। इस नए युगबोध में अनुभूति का स्तर इतना स्पष्ट और खुला है कि पुराने चिंतन के सूत्र बिखरने लगते हैं और ऐसे में स्वच्छंदतावादी रचनाकार अपनी सीमाओं से निकलकर नई दिशाओं की ओर बढ़ते हैं। लेकिन किसी भी समय और समाज में सभी व्यक्ति एक ही दिशा में उन्मुख हो ऐसा नहीं होता। भारत के संदर्भ में तो यह तलस्पर्शी विभेदों का युग है। जहाँ प्रत्येक रचनाकार या व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रतिक्रिया करता है और अपने युगबोध का सामना करता है। कुछ लोग अपनी आँखें दुःख और पीड़ा से भरे समाज से हटाकर अपनी अंदरूनी परतों की ओर झाँकते हैं और व्यैक्तिक भावनाओं के अथाह सागर में डूब जाते हैं। वही दूसरा वर्ग सामाजिक न्याय, गरीबी, विषमता, न्याय आदि के लिए आवाज बनता है।

पहले वर्ग की अनुभूति आध्यात्मिकता से पूर्णतः रहित स्थूल दैहिक धरातल पर पल्लवित होती है इसलिए इन्हें प्रायः व्यक्तिवादी रचनाकार कहा जाता है। लेकिन व्यक्तिवादी होने का मतलब समय और समाज से बिल्कुल उदासीनता भी नहीं है।

इस बदलते युग में कोई भी दृष्टि, जीवन शैली, विचार, दर्शन अपरिवर्तित रहे, ऐसा नहीं हो सकता। 'स्पैंगलर' ने 'डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट' में कहा है कि "आंदोलन, संस्कृति और सभ्यता लहर की तरह होते हैं। एक लहर अपनी समूची ऊँचाई प्राप्त करने के बाद ढल जाती है, फिर दूसरी लहर आती है।"[65] अतः यह कहा जा सकता है कि जिन मूल्यों को लेकर स्वच्छंदतावाद की लहर उठी उसने अपनी भूमिका निभाते हुए सामयिक परिवर्तनों और उससे संदर्भित नए मूल्यों को भी जगह दिया। जिससे आगे चलकर स्वच्छंदतावाद की रोमानी कविता अपने अति विद्रोही स्वरूप और इन्द्रिय संवेदनों के कारण रोमानी कविता गली से निकल चौड़े सड़क पर कदम रखती है और नई रोमानियत के रूप में परिभाषित होती है। ऐसा नहीं है कि एकदम नई चीज उभरकर आती है बल्कि स्वच्छंदतावादी रोमानियत की प्रगीतात्मकता, मुक्तछंद की धारणा, लय विधान और शिल्प योजना सब वही है।

"इस काव्यधारा का प्रमुख उपजीव्य केवल प्रेम या श्रृंगार नहीं था। इस धारा से सम्बद्ध कवियों ने किसी संप्रदाय या मत का निर्माण नहीं किया था। वे मूलतः अनुभूति के गायक थे। उनमें देहबोध बड़ा तीखा था और वे पार्थिव शरीरी मांसल और स्थूल इन्द्रियानुभूती को यथावत रूप में व्यक्त करना चाहते थे। उनका काव्य-परिप्रेक्ष्य स्वच्छंदतावादी कवियों के समान विशाल नहीं था और न वे अत्यंत मानवीय दृष्टिकोण से संवतित थे। इसके विपरीत वे पार्थिव अनुभूतियों के चितेरे थे। वे बड़ी कुशलता से दैहिक कामनाओं और क्षुधाओं का वर्णन किया करते थे। इसके अतिरिक्त वे लोकानुभूती के ग्रहण और निवेदन की कला में प्रवीण थे।"[66]

नई रोमानी कविता स्वच्छंद चेतना के कई स्तरों पर विकसित होती है। इससे पहले रोमानी कविता आध्यात्मिक भूमिका पर आधारित थी, किंतु नई रोमानियत के अंतर्गत वह आध्यात्मिक रूढ़ि से मुक्त

---

[65] स्पैंगलर, 'डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट', पृष्ठ संख्या-77

[66] डॉ.नरेंद्र देव वर्मा, 'हिंदी नवस्वच्छंदतावाद', पृष्ठ संख्या : 34-35

होकर लौकिक संवेदना और देह-बोध के धरातल पर प्रतिष्ठित होती है। जिसमें रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर इत्यादि कवि प्रमुख रूप से उभरते हैं।

2.1 गीति-रचना :

वैसे तो गीति रचना की पुनः प्रतिष्ठा स्वच्छंदतावाद के ही समय में हुआ। स्वच्छंदतावादी काव्य यद्यपि स्वच्छंद चेतना के आधार पर विकसित हुआ था, लेकिन आगे चलकर वह भी रूढ़िग्रस्त होने लगा। यही कारण है कि स्वच्छंद चेतना अपनी पूरी ताकत के साथ विद्रोह करती है और गीति रचना के रूप में अभिव्यक्ति पाती है। इसके संदर्भ में कहा गया कि यह गीति रचना व्यैक्तिकता का गायन है लेकिन यह पूर्णतः सही नहीं है। इन गीतों में व्यक्ति की आशा आकांक्षा की तीखी अभिव्यक्ति भी है। गीतिकार धर्मवीर भारती का गायन देखिए-

"मैं गाता हूँ स्वर नभ से टकराते हैं!
ये गीत नहीं द्रव निष्प्रभ लोचन के
ये गीत न भूखे प्यासे जीवन के
तूफानी ताकत बानी में भरकर मैं गाता हूँ स्वर नभ से टकराते हैं।"[67]

ये गीत क्षण भर के आवेशों का नहीं है बल्कि यह सीमाओं के बंधन से परे युगों-युगों का है। व्यक्ति की व्यक्तिकता कभी सामाजिक निरपेक्ष नहीं होती। "नवस्वच्छंदतावादी गीति रचना में वे ही प्रवृत्तियां अधिक मुखर हुई है जो स्वच्छंदतावादी काव्य के अंतर्गत अनेकानेक आवरण में दबी हुई थी। इन

[67] धर्मवीर भारती, 'आद्यन्त', पृष्ठ संख्या-27

प्रवृत्तियों का प्रकाशन एक आमूल नवीनता का भान कराता है। संभवतः इसी कारण कुछ समीक्षकों ने इसे एक स्वच्छंद प्रवृत्ति के रूप में देखा है।"[68]

हम देखते हैं कि स्वच्छंदतावादी कवियों के यहाँ देह-बोध दार्शनिकता के आवरण में ढका हुआ है लेकिन आगे चलकर नई रोमानी गीतकारों ने इस देह-बोध को अनावृत्त करते हुए इरोटिक दैहिकता का गायन किया। इन्होंने शरीर को दार्शनिक व्याकरण से मुक्त करके स्वच्छंद चेतना की एक नई दिशा का प्रतिफलन किया। धर्मवीर भारती ने 'गुनाह का गीत' गाकर इसकी प्रतिष्ठा की-

"अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
        महज इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो?
        महज इससे किसी का स्वर्ग मुझपर शाप कैसे हो?"[69]

अज्ञेय जी अपने 'राग-संबंधों की वैचारिक पृष्ठभूमि' लेख में लिखते हैं कि "जिस युग में सभी कुछ का नए सिरे से मूल्यांकन हो रहा है, क्योंकि पुराने और प्रतिष्ठित मूल्य संदिग्ध हो गए हैं, उसमें प्रेम के मूल्य का अन्वेषण हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। और जिस युग में सभी रस मिश्ररस हों, उसमें यदि राग-संबंधों को भी एक वैचारिक पृष्ठभूमि दी जाए, तो वह अकल्पनीय नहीं है।"[70]

इस संदर्भ में धर्मवीर भारती की 'नया रस' कविता उल्लेखनीय है-

---

[68] डॉ.नरेन्द्र देव वर्मा, 'हिंदी नवस्वच्छंदतावाद', पृष्ठ संख्या-36
[69] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ-22
[70] संपादक-पुष्पा भारती, 'धर्मवीर भारती की साहित्य-साधना', पृष्ठ-369

प्रभु,
इस रस को
इस नए रस को क्या कहते हैं?
जिसमें शृंगार की आसक्ति नहीं
जिसमें निर्वेद की विरक्ति नहीं
जिसमें बाँहों के
फूलों-जैसे बंधन के
आकुल परिरम्भण की गाढ़ी तन्मयता के क्षण में भी
ध्यान कहीं और चला जाता है
तन पिघले फूलों की
आग पिया करता है
पर मन में कई प्रश्नचिन्ह उभर आते हैं
यह सब क्या है?
क्यों है?
इसके बाद
-और बाद
-और बाद
-और बाद
फिर क्या है?
चुम्बन आलिंगन का जादू
मन को जैसे ऊपर ही ऊपर से छूकर रह जाता है।
अंदर ज़हरीले अजगर-जैसे प्रश्नचिन्ह
एक-एक पसली को जकड़-जकड़ लेते हैं
फिर भी बेक़ाबू तन
इन पिघले फूलों की रसवंती आग बिना
चैन नहीं पाता है

प्रभु,
इस रस को
इस नए रस को क्या कहते हैं?”[71]

इस तरह नई रोमानी कविता ‘राग-संबंधों’ के नए मूल्य स्थापित करती है जो कि स्वच्छंदतावाद के विकास का ही अगला सोपान है। ऐसा भी नहीं कि दोनों एकदम पृथक काव्यधाराएँ हैं बल्कि इसमें भी स्वच्छंदतावादी काव्य की ही ‘व्यैक्तिता’, ‘प्रणयावेश’, ‘निराशा और वेदना’ की अभिव्यक्ति हुई है।

इन गीतकारों ने केवल स्वच्छंदतावादी काव्य-आस्था, नवनिर्माण की आशा, प्रेम का आध्यात्मिक स्वरुप और रहस्यात्मक प्रतीक योजनाओं का बहिष्कार किया और ये अधिक यथार्थोन्मुख और अनावरण प्रिय हुए। इन्होंने भावनाओं की दैहिक व्यंजना की। या यों कहें कि इन्होंने प्रेम को दैहिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

धर्मवीर भारती के संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं- “ ‘प्रेम’ कविताएँ लिखने पर भी भारती छायावादी प्रेम-अशरीरी प्रेम के पागलपन में नहीं हैं। शरीरी प्रेम उनका अरमान है-उसी मूल राग को वे गाते हैं। यह कवि, प्रेम को एकदम नया अर्थ-संदर्भ दे देता है-पर इस संदर्भ को फ्रायडीय चश्मे से देखने की जरूरत नहीं है। यह प्रेम कुंठा नहीं है-मुक्त प्रवाह है- उन्मुक्त सागर की छलकन और मुस्कान। भारती के पास कवि-कर्म का वह हुनर है कि वह रोमांटिक और क्लासिकल दोनों का खमीर सर्जनात्मकता में उठाकर एक नया काव्य-स्वाद पैदा कर देता है।”[72]

---

[71] धर्मवीर भारती, ‘सात गीत-वर्ष’, पृष्ठ-25

[72] संपादक-पुष्पा भारती, ‘धर्मवीर भारती की साहित्य-साधना’ (निबंध-पके अनुभवों में आत्म-मंथन की शक्ति का प्रकाश: कृष्णदत्त पालीवाल), पृष्ठ संख्या-343

अत्याधुनिक समय में नष्ट होती हुई 'मानवीय संवेदना' और 'प्रयोजनमूलक संबंधों की वरीयता', 'क्षणिक अस्तित्त्व', 'ठहराव की कमी', 'तेजी' और 'बाजार द्वारा तय मूल्यों' के मद्देनजर भावनाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति भारती के गीतों में दिखाई देती है।

'बातचीत का एक टुकड़ा' कविता इसका उदाहरण है-

"मैं अब अपनी शामें बरबाद नहीं करता

कुछ कामकाज में हरदम खोया रहता हूँ

....

...पर यह क्या पागल!

मैं बेहतर हूँ, सुख से हूँ,

फिर इसमें ऐसी कौन बात है रोने की?

जाने दो,

लो यह चाय पियो!"[73]

प्रणय-भंग के बाद की मनः स्थिति इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है। पहले जैसे वियोग और विरह-वर्णन जैसी स्थितियां नहीं रही। लेकिन दैहिक प्रणयानुभूति के साथ ही निराशा के दर्दीले स्वर जरुर हैं। 'ठंडा लोहा' संग्रह जिसका प्रमुख उदाहरण है। इस संग्रह की भूमिका में भारती जी लिखते हैं कि "किशोरावस्था के प्रणय रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन आत्म समर्पणमयी वैष्णव भावना, और उसके माध्यम से अपने मन के अहम का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस

[73] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या : 74-75

छंद-यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।"[74] भारतीय अपने नितांत व्यैक्तिक अनुभूतियों से ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं, जहाँ वे उस आकर्षण की विराट दृश्य को अपनी अनुभूति में शामिल किए रहते हैं। 'कनुप्रिया' और 'ठंडा लोहा' के गीत इस के प्रमाण हैं।

कनुप्रिया कहती है-

"यह जो मैं कभी-कभी चरम साक्षात्कार के क्षणों में
बिल्कुल जड़ और निस्पंद हो जाती हूँ
इसका मर्म तुम समझते क्यों नहीं सावरे
....
जो मुझे बार-बार चरम सुख के क्षणों में
भी अभिभूत कर लेती है।"[75]

इस आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया में ही भारती ने विराट से भी साक्षात्कार किया है। स्त्री और पुरुष के बीच के आकर्षण ने कवि मन को हर युग में, हर काल में झकझोरा है। यही झकझोर अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्ति पाई है। भारती के संकलन 'सात गीत वर्ष' के कई गीत अत्यंत वैयक्तिक है। इन गीतों में 'ठंडा लोहा' की तुलना में चाहे वेग की कमी हो, परंतु उनकी मृदुलता, उनकी महक तथा पूजा भावना और अधिक स्पष्ट है। 'बातें' शीर्षक से गीत का यह अंश-

"सपनों से डूबे-से स्वर में
जब तुम कुछ भी कहती हो
मन जैसे ताज़े फूलों के झरनों में घुल जाता है जैसे गंधों की नगरी में गीतों से

---

[74] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', (भूमिका से)

[75] धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ संख्या-23

चंदन का जादू दरवाजा खुल जाता है

.......शब्द कहीं दूर, कहीं दूर अस्त होते हैं।"[76]

'ठंडा लोहा' संग्रह में 'डोले का गीत', 'गुनाह का गीत', 'पावस गीत' और 'बोवाई का गीत' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सभी गीत अलग-अलग मिजाज लिए हुए हैं जिनमें एकदम गँवई माटी की सोंधी महक है।

'सात गीत वर्ष' संग्रह तो गीतों को ही समर्पित है। इसके गीत एक दुसरे भावभूमि पर खड़े हैं जिनमें 'पराजित पीढ़ी का गीत' और 'धुल-भरी आँधी का गीत' अपने समय की सच्चाई को ईमानदारी से गुनगुना रही है।

'कनुप्रिया' में भारती के गीतों का उत्कर्ष दिखाई देता है। मानवीय जीवन के साधारण प्रेम की परिकल्पना से एक पौराणिक आख्यान को और जीवंत कर देना और तात्कालिक समय में उसको और प्रासंगिक बना देना भारती की रचनात्मकता का श्रेष्ठ है। 'पूर्वराग' शीर्षक के भीतर पाँच गीतों के अलावा 'मंजरी-परिणय' में 'आम्र-बौर का गीत' प्रेम और प्रकृति का राग पाकर झंकृत हो उठे हैं। तब यह प्रश्न उठता है-

"यह जो अकस्मात

आज मेरे जिस्म के सितार के

एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो --

सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत

[76] धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ-संख्या:101-102 ('बातें' कविता)

तुम कब से मुझ में छिपे सो रहे थे।"[77]

प्रेम की भाषा सबसे संगीतमय होती है, आप उसे बिना लय के भी गुनगुना सकते हैं। प्रेम वो अनुभूति है जिसमें कर्कशता खत्म हो जाती है और जीवन में राग पैदा होता है। उसी राग की उत्पत्ति है 'कनुप्रिया' जहाँ समर्पण ही संगीत की लय बन गयी है और 'प्रतीक्षा' सबसे खूबसूरत क्षण।

"सुनो मेरे प्यार!

तुम्हें मेरी जरूरत थी न, लो मैं सब छोड़ कर आ गयी हूँ

ताकि कोई यह न कहे

कि तुम्हारी अंतरंग केलिसखी

केवल तुम्हारे सांवरे तन के नशीले संगीत कि

लय बन कर रह गयी..."[78]

इस तरह भारती के यहाँ रोमानियत गीति के माध्यम से मुखर हुई है, जिसकी राग और ध्वनि मानवीय जीवन से सीधा सरोकार रखती है और जीवन के भीतर सिहरन पैदा करती है। यही सिहरन मनुष्य को संवेदनशील बनाकर समाज को बेहतर करने का प्रयास करती है।

2.2 आधुनिकता-बोध और रोमानी काव्य चेतना का द्वंद्व :

कोई भी युग पुरानी जीवन-पद्धति और विचारों को लेकर पूर्णतः आश्रित नहीं रहता बल्कि अपने समय के अनुकूल नवीन धारणाएँ और मान्यताएँ बनाता है तथा मौलिक विचारों को व्यक्त करता है। परिवर्तन

---

[77] धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ संख्या-13

[78] धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ संख्या-82

की यह इच्छा और क्रिया प्रत्येक युग के साथ-साथ बदलती रहती है। एक युग की मान्यताएँ दूसरे युग के लिए पुरातन हो जाती है। इसलिए वह युग परिवर्तन चाहता है। इस परिवर्तन को लाने में कवि, दार्शनिक, कलाकार,आदि सभी का हाथ होता है। कवि अपनी काव्य-पद्धति और काव्य-वस्तु में परिवर्तन करता है और समाज के सम्मुख नए आदर्श प्रस्तुत करता है।

रोमानी चेतना जहाँ कवि अपने जीवन को और अधिक सुंदर बनाने का प्रयत्न करता है। वह जीवन की कुरूपताओं के बीच से भी सौंदर्य की खोज करता है। स्टाडर्ड (stoddard) का कहना है कि “रोमांस उस जीवन की ओर संकेत करता है जो वर्तमान से अधिक उत्तम तथा अधिक पूर्ण हो।”

“It is something hinting of the life better, completer or nobler, than the present life.”[79]

कृष्णमुरारी मिश्र रोमानियत की परिभाषा देते हुए कहते हैं- “रोमांटिसिज्म जीवन और जगत के प्रति एक ऐसी भावात्मक दृष्टि है जिसमें अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की सर्जन-प्रेरणा अपनी संपूर्ण अनुभूति की प्रगाढ़ता के साथ उन्मुक्त आत्माभिव्यक्ति की विविध दिशाओं का स्वतः निर्माण करती चलती है।”[80]

रोमानी चेतना की प्रमुख विशेषताओं के रूप में ‘कल्पना’, ‘वैयक्तिकता’, ‘प्रकृति’, ‘सौंदर्य-चेतना’, ‘प्रेम’, ‘विषाद और करुणा’, ‘विस्मय और रहस्यानुभूति’ इत्यादि को देखा जा सकता है। इन्हीं विशेषताओं का बोध जब दो स्तरों पर दिखाई पड़ता है तो द्वंद्व की स्थिति पैदा होती है। आधुनिक युग की जटिलता ने द्वंद्व को जन्म दिया है जो कि मनुष्य के विकास का सूचक बन गया है।

---

[79] Stoddard, ‘An introduction of the poetry of the Romance Revival’, page-02

[80] कृष्णमुरारी मिश्र, ‘रोमांटिक युगीन अंग्रेजी कविता और छायावाद’, पृष्ठ-23

'बृहत् हिंदी कोश' के अनुसार "दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं या भावों का जोड़ा जैसे शोक-मोह, शीत-उष्ण आदि।"[81]

मानविकी पारिभाषिक कोश में कहा गया है- "द्वंद्व मानसिक तनाव की वह अवस्था है जो दो या दो से अधिक ऐसी विरोधी इच्छाओं के उत्पन्न होने तथा अपनी ही कोई न्यूनता या हीनता, वातावरणगत अवरोध अथवा इच्छाओं के विघटन से उत्पन्न होती है।"[82]

इसतरह पाते हैं कि दो विरोधी मतों में संघर्ष होने के पश्चात् ही नये मत की पुष्टि होती है। किसी भी वस्तु को एक साथ ग्रहण करने और अस्वीकार करने की इच्छा द्वंद्व को जन्म देती है। यह द्वंद्व ही मनुष्य को क्रियाशील बनाता है, इसलिए मनुष्य के विकास के लिए द्वंद्व का होना आवश्यक भी है। जयशंकर प्रसाद के अनुसार द्वंद्व चित्ति के केन्द्रों का संघर्ष है जो द्वयता की स्थिति में उत्पन्न होता है-

"चित्ति केन्द्रों में जो संघर्ष चला करता है,
द्वयता का जो भाव सदा मन में भरता है।"[83]

द्वंद्व के बिना मानव-जीवन का विकास असम्भव है। रामचन्द्र शुक्ल भी कहते हैं कि "अनुभूति के द्वंद्व से ही प्राणी के जीवन का विकास होता है।"[84] साहित्य तो अनुभूतियों का ही पुंज है तो यहाँ भी द्वंद्व लाज़िमी है और इसका विशेष महत्त्व भी है। धर्मवीर भारती भी अपनी रचनात्मक विकास यात्रा में द्वंद्व पैदा करते हैं जिसे उनकी कविताओं में कई स्तरों पर देखा जा सकता है। प्रकृति के स्तर पर इनकी कविताएँ आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रकृति के साथ बदलते परिवेश के संदर्भ में व्याख्यायित करती हैं। आधुनिक युग ने जहाँ महानगरीय सभ्यता का पोषण किया, वहीं इसने जीवन

[81] 'बृहत् हिंदी कोश', पृष्ठ-545
[82] 'मानविकी पारिभाषिक कोश', पृष्ठ-74
[83] जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', पृष्ठ-86
[84] रामचन्द्र शुक्ल 'चिंतामणि', भाग-01

की सहजता और प्रकृति की पारम्परिक रम्यता के प्रति संदेह भी उत्पन्न किया। जो प्रकृति अतीत में एक महक पैदा करती थी, वही प्रकृति जीवन की विसंगतियों के बीच किताब की तरह बंद हो गई है-

"मुँह अँधेरे बौर की महक
और आँगन में जाड़े की बतियाती दोपहरें
ख़त्म किताब की तरह मैंने बंद कर दी
सिर्फ़ आँखों में देर तक कसकते रहेंगे वे अक्षर
जो लिख गया था वसंत तुम्हारे होंठों पर।"[85]

यह द्वंद्व दर्शाता है कि जो कुछ अतीत में सुन्दर था, रमणीय था, कोमल था वह आज भी वैसा ही बना रहे, यह आवश्यक नहीं है क्योंकि "देशकाल के अनुसार बदलती, बढ़ती और उगती संवेदनाएँ ही आधुनिकता है।"[86] 'घाटी का बादल' शीर्षक कविता में प्रकृति का अप्रतिम सौन्दर्य दिखाई पड़ता है लेकिन उसी प्रकृति का एक रूप डैने खोले भयावह है तो वहीं घाटी रतिश्रान्ता-सी मलिन पड़ी है। आकाश गुमसुम-सा, उदासीन-सा है तो पर्वत निराधार-सा। सकल सृष्टि विश्रृंखल विभक्त होकर बिखर गई है। प्रकृति के मूल में हस्तक्षेप यहाँ द्वंद्व के रूप में उभरता है।

"कुछ भी नहीं रहा
उतुंग शिखरवाला गरवीला पर्वत
रंगों के कच्चे धब्बे-सा धुला, बह गया-
घाटी, गाँव, खेत, वन, झरने
सकल सृष्टि ज्यों धुँआ-धुँआ अणुओं में

[85] धर्मवीर भारती, 'सपना अभी भी', (आख़िरकार-कविता) पृष्ठ संख्या-56
[86] अज्ञेय, 'सर्जक और संप्रेषण', पृष्ठ संख्या-58

विश्रृंखल विभक्त हो बिखर गई है !

शेष बचा हूँ केवल मैं

या मेरे चारों ओर दूर तक फैला हुआ सफेद अँधेरा।"[87]

'सपना अभी भी' संकलन की कविताएँ रोजमर्रा के जीवन और जीने के चक्र में उलझी हुई सारी संवेदनाएँ तथा यांत्रिक जीवन की ऊब को जिस भाषा में व्यक्त करती है, वह आधुनिकता की पहलुओं से युक्त है-

"जरुरी नहीं की कोई दर्दनाक वाकया घटे

कोई जवान मौत, कोई विस्फोटक दुखांत

चट्टान से किसी जहाज की टकराहट

जरुरी नहीं.."[88]

यहाँ प्रयुक्त भाषा सच्चाई को कटु शब्दों में बयाँ कर रही है कि मरने के लिए किसी बड़ी घटना का होना जरूरी नहीं है। "किसी अँधेरे मोड़ पर गला घोटकर मारे जाते हुए/ किसी राहगीर की घिघियाती अमानुषिक चीख" जैसी भाषा रोमानी तो बिलकुल नहीं हो सकती। महानगरीय सभ्यता जिस प्रकार व्यक्ति को अंदर ही अंदर धीरे-धीरे मरने के लिए विवश कर रही है, उस जटिल सत्य को इसी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। यथार्थ से जुड़ने के बाद भी भारती की रोमानी प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है जैसे-

"हमने भी अनमने उदास धूल में लिखे अपने नाम

हमने भी भेजे संदेश उड़ते बादल वाली शाम

जाग-जाग वातायन से देखी आगंतुक की राह

---

[87] धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ संख्या-97

[88] धर्मवीर भारती, 'सपना अभी भी', (धीरे-धीरे अंदरूनी मौत) पृष्ठ संख्या-39

हाय क्या अजब थी वह प्यास, हाय हुआ पर क्या अंजाम"[89]

यहाँ उदास धूल में अपना नाम लिखना, उड़ते बादल वाली शाम संदेश भेजना जैसी कोमल भाषा रोमानी चेतना को दिखाती है। यह भाषा अतीत की स्मृतियों को उनके कोमल और उदात्त रूप में व्यक्त करती है। रोमानी भाषा और आधुनिक भाषा के एक साथ प्रयोग से भारती जी ने अतीत और वर्तमान के द्वंद्व को उभारा है। 'खाली हाथ तुम्हारे लिए' इसी प्रकार की कविता है। जहाँ एक ओर "काश मैं तुम्हें दे सकता आज/ इलाहाबाद की वह सर्द सुबह/ जब कांपती धूप हमारे साये कितनी दूर तक फेंकती थी"[90] कहकर भाषा की उस रोमानियत को प्रकट किया गया है जो वर्तमान के समक्ष अतीत को बहुत सुखद रूप से प्रस्तुत करती है । दूसरी ओर "विश्वास एक झूठा दरवाजा है / रंग से बना / पुख्ता दीवार पर /बार-बार उस झूठ दरवाजे से तुम्हारा / माथा टकराया"[91] कहकर आदर्श और यथार्थ के अंतर को उद्घाटित करने वाली भाषा का प्रयोग है। यहाँ संरचना के स्तर पर एक साथ ही रोमानी और आधुनिक भाषा का प्रयोग द्वंद्व का सूचक है। इसके अतिरिक्त 'उसी ने रचा है', 'दीदी के धूल भरे पाँव', 'चैती-तीन टुकड़े', 'शब्द तुमने रचे', 'शेष', 'कोई और तुम' आदि कविताओं में भी शब्दों की कोमलता और भावुकता दृष्टिगत होती है जो कवि की रोमानी चेतना की ओर संकेत करती है। रोमानियत जहाँ बिंबों का सृजन करती है, वहीं आधुनिकता में सृजन और निषेध दोनों दिखाई पड़ता है। इस कारण द्वंद्व की स्थिति यहाँ भी बनती है। एक तरह से बिंब और सपाटबयानी का संयोजन आधुनिकता की पहचान भी है। डॉ. नरेंद्र मोहन के विचार में "विचार की दिशा बिंब की अपेक्षा व्यंग्य की तरफ रहती है। बिंब चूंकि व्यंग्यात्मकता और विसंगति बोध को प्रायः अवरुद्ध करता है, इसलिए उसे आज की कविता का पहला और अंतिम मानदंड नहीं माना जा सकता। ऐसा मान लेना रोमांटिक

---

[89] वही, (रवीन्द्र) पृष्ठ संख्या-13

[90] वही, (ख़ाली हाथ तुम्हारे लिए) पृष्ठ-37

[91] वही, पृष्ठ संख्या-38

कविता की ओर लौटना होगा। हाँ बिंब और विवरण या सपाटबयानी का संतुलन अक्सर सध जाता है।"[92] इसलिए भारती जी की कविता में भी रोमानियत की बिंबधर्मी कविता के साथ ही सपाटबयानी का विचारपरक विश्लेषण मिलकर द्वंद्व पैदा करता है-

"तो क्या शब्दकोश से मिटा दिया गया
एक गैर-जरूरी शब्द- स्वतंत्रता
एक तकलीफ़देह शब्द जो खाहमखाह याद दिलाता था-
नीला फैला आकाश, खुली खिड़की, आजाद तैरते बादल
पाखी की चहक, झूलती डाली, पहाड़ी नदी
उन्मुक्त चंचल बच्चे
घर लौटते निश्चिंत बतियाते लोग
अब सहमे हुए लोग बतियाते नहीं
बाँध दी गयी हैं झूमती शाखें
कसी हुई मुट्ठियाँ तरेरी हुई आँखें
रातों रात बदल गईं अपने आप" [93]

यहाँ सपाटबयानी के माध्यम से जिस बिंब को चित्रित किया गया है वह वैचारिक प्रखरता को प्रकट करती है। सोच का एक आयाम स्थापित करती है। 'नीला फैला आकाश', 'आजाद तैरते बादल', 'पाखी की चहक', 'झूलती डाली' जैसे शब्दों के प्रयोग से केवल रोमानी बिंब ही नहीं बल्कि स्वतंत्रता के वातावरण को चित्रित करने के लिए ही इन शब्दों और बिंबों का चयन किया गया है। इससे रचनाकार की रचनात्मक श्रेष्ठता का पता चलता है। "भारती की संवेदनशीलता ने बिंबों को जहाँ

---

[92] डॉ. नरेंद्र मोहन, 'शास्त्रीय आलोचना से विदाई', पृष्ठ संख्या-43

[93] धर्मवीर भारती, 'सपना अभी भी', 'पर्व' कविता, पृष्ठ संख्या:79-80

ऐंद्रियधर्मी बनाकर ग्राह्य बनाया है, वहीं उनकी चिंतन प्रक्रिया ने बिंबों में रंग रूप भर दिया है।"[94] इस तरह के प्रयोगों से बिंब और सपाटबयानी का संयोजन सशक्त हुआ है और कविता का रूप गठन भी कठिन होता चला गया है। धर्मवीर भारती के काव्य में दोनों बातें देखने को मिलती है। रोमानियत जितना सहज करता है, आधुनिकता-बोध उतना ही असहज।

प्रकृति चित्रण में रोमानी बिंबों का प्रयोग कवि की कल्पनाशक्ति को ही नहीं उभारता बल्कि प्रकृति की विराटता को दिखाते हुये प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते को भी परिभाषित करता है। मनुष्य की बदलती मनोवृत्तियाँ भी प्रकृति को अपने अनुसार ही देखती हैं। एक दृष्टि प्रकृति की इस कोमलता को दर्ज करती है-

"सूखता जाल
पहाड़ी नदी के कगारे पर
हरियाली सारे पर
दूब के चदरे पर हल्दी के छीटें-सी घाम
बाँस की हिलती पत्तियों का थापा--
हवा के द्वारे पर"[95]

दूसरी दृष्टि मनुष्य के शोषण और उसकी विवशता को मार्मिकता के साथ प्रकृति के माध्यम से ही व्यक्त करती है-

"गन्ने के खेतों से गुजरते हुए मुझे
सुन पड़ती है कोड़ों की आवाज़ें
और लंबी धारदार पत्तियों पर दीखती है

[94] डॉ.प्रतिभा गर्ग, 'स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी काव्य चेतना', पृष्ठ संख्या- 311

[95] धर्मवीर भारती, 'सपना अभी भी', उबुद (बाली द्वीप) की एक दोपहर, पृष्ठ संख्या-46

फटे हुए सिरों से टपकती रक्तधार

चीड़ के झनझनाते जंगलों में लटके फँसियारे

और झील में से प्रेत-स्वरों में मुझे बुलाते हैं पनडुब्बे !"[96]

यहाँ कितने दृश्य, कितनी आवाज़ें, कितनी घटनाएँ एक साथ मिलकर एक ऐसे माहौल को चित्रित कर रही हैं जो साधारण नहीं है लेकिन बहुत साधारण तरीके से मनुष्य की संवेदना को झकझोर रही है। यही ताकत है कविता की। पूर्ववर्ती कविताओं से यह द्वंद्व इस रूप में भिन्न है कि यहाँ रोमानियत लादी हुई नहीं है, बल्कि जीवन पद्धति में सहजता से आई हुई है। यही कवि को अधिक संवेदनशील बनाती है। गंगाप्रसाद विमल के अनुसार "यह रूमान छायावादी स्वच्छन्दता जैसा नहीं है; इसके अपने कुछ अन्य कारण है: अतीत राग, पीछे छूटे सांस्कृतिक केन्द्रों की स्मृतियाँ और भाषा का दृश्य-बिंबात्मक प्रयोग।"[97]

प्रकृति से संबंधित प्रतीकों का प्रयोग यहाँ कोमलता की अभिव्यक्ति नहीं करता बल्कि एक संपूर्ण जातीय चेतना और सांस्कृतिक परिवेश को व्यक्त करता है। 'सोनारु के नाम' कविता शोषण चक्र में पिसते हुए एक आम आदमी के भयानक इतिहास का प्रतीक है-

"मैं इतने जादू भरे सौन्दर्य से घिरा

इस कटावदार चाँद और पहाड़ी झरने के पास

उदास खड़ा हूँ

जाते समय ले जाऊँगा अपने साथ

सिर्फ यह हरे पन्ने-सा खूबसूरत समुद्र

और तुम्हारी झुर्रियों में सूखी बिहार की गंगा की

---

[96] वही, 'सोनारु के नाम' पृष्ठ संख्या-62

[97] गंगाप्रसाद विमल, 'आधुनिकता: साहित्य के संदर्भ में', पृष्ठ संख्या-199

एक मुट्ठी रेत--"[98]

यहाँ प्रकृति की सुंदरता और आम आदमी की व्यथा को एक साथ परिभाषित किया गया है। 'सोनारु' साधारण जन का प्रतीक है जो जीवन की भरपूर सुंदरता में रहकर भी जीने के साधनों से लड़ता हुआ संघर्षरत है। "जैसे जीवन की व्याख्या बिना उस ऐतिहासिक विकास-गाथा के अधूरी है जो युगों-युगों से हमारे जीवन के अंश में विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार आज के भावबोध को उस समय तक नहीं समझा जा सकता जब तक अनुभूतियों के साथ हमारा बौद्धिक संबंध उतना नहीं होगा जितना कि रागात्मक संबंध होता है।"[99] आज की जटिल अनुभूतियों को समझने के लिए आम आदमी के मन के भीतरी स्तर को छूना अनिवार्य है और साथ ही आसपास के परिवेश का बौद्धिक स्तर पर तटस्थ आकलन जरूरी है, तभी कविता संरचना के स्तर पर सुगठित बनती है। भारती जी की कविताओं का ताना-बाना उनके जीवन की घटनाओं से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। जिस रचनाकार का जीवन ही द्वंद्व से भरा हो, तो रचनाओं में उसकी अनुगूँज सुनाई पड़े तो आश्चर्य की बात नहीं। भारती के संदर्भ में उनके सहयोगी और मित्र सेवाराम यात्री उनके इसी रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "'रचनाकार भारती के निकट जाने पर भी उनका सूक्ष्म और संवेदनशील सर्जक आसानी से पकड़ में आने वाला नहीं था। वे भीतर ही भीतर कई स्तरों पर द्वंद्व झेलते थे। उनकी मानसिक बुनावट बहुत ही सूक्ष्म और संश्लिष्ट थी। न कुछ लगने वाली बात भी उनके मन में फांस बनकर गड़ जाती थी। उनके भीतर एक रचनाकार और स्रष्टा का अहम भी कम नहीं था, जो गलत ढंग से छूते ही भयानक नाग की तरह फुफकार उठता था।"

भारती की कविताओं में रोमानी और आधुनिक चेतना में संवेदनात्मक धरातल पर द्वंद्व के ये प्रमुख बिंदु दिखाई पड़ते हैं-

01. पुरातनता और नवीनता के बीच द्वंद्व

---

[98] धर्मवीर भारती, 'सपना अभी भी', 'सोनारु के नाम' पृष्ठ संख्या-62

[99] लक्ष्मीकांत वर्मा, 'चुनी हुई रचनाएँ', (भाग-01) पृष्ठ संख्या-525

02.मूल्यों के स्तर पर

03.यथार्थ और कल्पना के स्तर पर

04.बौद्धिकता और भावुकता के स्तर पर

05.वैयक्तिकता के स्तर पर द्वंद्व

06.प्रकृति के प्रति भिन्न दृष्टिकोण से उत्पन्न द्वंद्व

07.सौन्दर्य के परिवर्तित प्रतिमानों के परिणामस्वरूप उत्पन्न द्वंद्व

08.प्रेम के प्रति दृष्टिभेद के कारण द्वंद्व

द्वंद्व की स्थिति कई बार परेशानी खड़ी कर देती है, लेकिन मानवीय जीवन की जटिलताओं और समय की पेंचीदगियों ने द्वंद्व की स्थिति को बढ़ा दिया है। आज के समय में आप किसी चीज से अपना मुख मोड़ कर बच नहीं सकते, आपको उसका सामना करना ही पड़ेगा। भारती जो की आरंभिक दौर में वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ मार्क्सवाद से जुड़े रहे। इलाहाबाद के प्रगतिशील लेखक संघ के हिंदी खंड के मंत्री भी रहें। लेकिन उनको मूलतया रोमानी व्यक्ति बताकर यह आरोप लगाया गया कि प्रेम-वेम पर लिखने वाला व्यक्ति हमारे आन्दोलन के काबिल नहीं है। इस तरह की स्थितियाँ किसी के लिए भी द्वंद्व पैदा करेंगी। भारती जी ने रोमानियत को ही जिया उसी पर लिखा लेकिन बाकि चीजें भी प्रभावित करती रही। जिससे उनकी रचनाओं में इस तरह के द्वंद्व उभर कर आते हैं।

रोमानी-भाव से व्यक्त कविता किस प्रकार अपने समय के साथ मुठभेड़ करते हुए अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। धर्मवीर भारती का काव्य इसका उदाहरण है। इस प्रवृत्ति की रचना जब आधुनिक संदर्भों से जुड़ती है तो नयेपन का बोध कराती है, इसलिए 'नई रोमानी कविता' के रूप में इसका विश्लेषण ज्यादे प्रासंगिक है । अगले अध्याय में इस 'नई रोमानियत' की भूमिका को 'नई कविता' के रचनात्मक विकास के संदर्भ में देखा गया है ।

तृतीय अध्याय

नई कविता के रचनात्मक विकास में धर्मवीर भारती की काव्यगत मान्यताओं का मूल्यांकन

अध्याय-03

नई कविता के रचनात्मक विकास में धर्मवीर भारती की काव्यगत मान्यताओं का मूल्यांकन

धर्मवीर भारती का काव्य-सृजन प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के संघर्ष से निर्मित होता है लेकिन रचनात्मकता का उत्कर्ष नई कविता में ही दिखाई पड़ता है। नई कविता जिसकी भाव भूमि लघुता को प्रतिष्ठित करती है। विराट की सत्ता को चुनौती देती है। ऐसे में धर्मवीर भारती मानव-मूल्य की स्थापना करते हैं। वे 'मानव मूल्य और साहित्य' नामक निबंध-संग्रह में समसामयिक साहित्य की नवीन सैद्धांतिकता, वैचारिकता और नए प्रतिमान को नई दृष्टि से देखते हैं। इस निबंध-संग्रह के अधिकांश निबंधों ने नई कविता के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए नई आलोचना का आधार तैयार किया। दूसरे निबंध संग्रह 'पश्यन्ती' में धर्मवीर भारती ने पुरानी जड़ीभूत सैद्धान्तिकता के शास्त्रीय प्रतिमानों पर आक्रमण किया है और नई कविता के मूल्यों को सैद्धांतिक रूप से स्थापित करने का प्रयास किया है।

धर्मवीर भारती की दृष्टि में "नई कविता में व्यक्तिवादी आग्रह या सामाजिक आग्रह का प्रश्न हिंदी के आलोचकों द्वारा एक भ्रमात्मक ढंग से उठाया जाता रहा है। वास्तव में नई कविता प्रथम बार समस्त जीवन का व्यक्ति या समाज, इस प्रकार के तंग विभाजनों के आधार पर न मापकर मूल्यों की सापेक्ष स्थिति में व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है। यदि हम उन गहन आंतरिक मूल्यों को समझने की चेष्टा नहीं करते तो, हम नई कविता की प्रकृति को समझने में भूल कर सकते हैं।"[100]

नई कविता के स्वरूप को समझने-समझाने के तमाम प्रयास हुए। दृष्टि वैशिष्ट्य के कारण कई स्थापनाएँ सामने आई। इस से नई कविता अपनी रचनात्मकता में और मुखर होती चली गई। डॉ. जगदीश गुप्त

[100] मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, (लेख-नई कविता और दायित्व की आंतरिकता) पृष्ठ :175-176

और लक्ष्मीकांत वर्मा की नई कविता संबंधी अवधारणा महत्वपूर्ण है। जिसके आलोक में नई कविता का पाठ किया जाता रहा है। डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार नई कविता प्रयोगवाद के विरोध में नहीं आई वरन उसको मुक्ताभाव से आत्मसात कर के इसी प्रसंग में उसका आविर्भाव हुआ। दूसरा उन्होंने रसानुभूति के स्थान पर "सह-अनुभूति" शब्द को प्राथमिकता दी, जिसमें भाव की जगह भाव और दृष्टिकोण दोनों की अभीष्टता है। तीसरे उन्होंने 'शब्द की लय' की जगह 'अर्थ की लय' को कविता के लिए महत्त्वपूर्ण माना।

धर्मवीर भारती की काव्यगत मान्यताओं का मूल्यांकन करने से पहले उनकी काव्य-रचनाओं का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। धर्मवीर भारती का साहित्य बहुआयामी है। इन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक और निबंध आदि सभी विधाओं में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। भारती की पहचान प्रमुखतः कवि के रूप में ही है। लेकिन गद्य-साहित्य में भी पर्याप्त रूचि होने के कारण इन्होंने कथा-साहित्य और निबंध-लेखन के माध्यम से अपने आपको प्रस्तुत किया है, जिसका साहित्य-चिंतन में विशेष स्थान है।

धर्मवीर भारती की पाँच काव्य-कृतियाँ हैं- 'ठंडा लोहा', 'अँधा-युग', 'सात गीत वर्ष', 'कनुप्रिया' और 'सपना अभी भी'।

<u>ठंडा लोहा</u> :

'दूसरा सप्तक' में संकलित होने के बाद यह धर्मवीर भारती का पहला काव्य-संग्रह है। जिसका प्रकाशन वर्ष 1952 है। इसमें कुल 39 कविताएँ हैं। इसकी अधिकतर कविताएँ छायावादी भावबोध से युक्त रोमानी संस्कार लिए हुए है। इन कविताओं में प्रेम से जुड़े हुए तमाम अनुभव और संवेदनाएं हैं। प्रेमिका का रूप-वर्णन प्रकृति के कोमल उपादानों के द्वारा किया गया है। प्रेमिका से बिछड़ने का दुःख-दर्द,

कसक, टीस और निराशा भी व्यक्त हुई है। प्रणय से संबंधित होने के कारण इन कविताओं में रोमानियत और कल्पना अधिक है। लेकिन साथ ही 'ठंडा लोहा', 'सुभाष की मृत्यु पर', 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ', 'फूल, मोमबत्तियाँ, सपने' और 'मेरी परछाही' जैसी कविताएँ कवि की परिवर्तित आधुनिक चेतना को व्यक्त करती हैं। भाषा के स्तर पर भी इस संग्रह की कविताएँ कोमलता और लालित्य लिए हुए है।

अँधा-युग :

हिंदी साहित्य की इस बहुचर्चित काव्य-नाटक का प्रकाशन 1954 में हुआ था। महाभारतकालीन आख्यान का आश्रय लेकर भारती ने युग-जीवन की विसंगतियों और मूल्यहीनता को व्यक्त किया है। युद्ध के उपरांत टूटते-बिखरते मूल्य, संबंध, मर्यादाएं, आस्थाएँ, किस प्रकार मूल्यहीनता, संबंधहीनता और अनास्था में बदल जाते हैं, किस प्रकार विघटित हो जाते हैं यही 'अँधा-युग' का कथ्य है।

भाषा और शैली में भी नवीनता होने के कारण यह कृति आकर्षित करती है। काव्य के रूप में नाटक और नाटक के रूप में काव्य का अद्भुत सम्मिश्रण होने के कारण यह एक अनोखी रचना है।

सात गीत-वर्ष :

इस संग्रह का प्रकाशन वर्ष 1959 है। 'ठंडा लोहा' के बाद स्फुट कविताओं के रूप में भारती का यह दूसरा संग्रह है जो 'ठंडा लोहा' की किशोर मन की अनुभूतियों से अलग हटकर 'प्रमथ्यु गाथा', 'वृहन्नला', 'बाणभट्ट', 'टूटा पहिया' आदि प्रमुख सशक्त कविताओं से युक्त है। यों तो इस संग्रह में भी रोमानी चेतना पूरी तरह विद्यमान है, परंतु यहाँ भारती अपने आसपास के परिवेश के प्रति भी सजग हैं। धर्मवीर भारती ने यहाँ क्षण की महत्ता को प्रतिपादित किया है। अनास्था से घिरे होने के बाद भी कवि

की आस्था खंडित नहीं हुई है। इस संग्रह में शोषक और पूँजीवादी वर्ग पर भी व्यंग्य प्रहार किया गया है। मिथक के सहारे आधुनिक संवेदना को भी वाणी इनकी कविताओं में मिलती है।

कनुप्रिया :

अँधा-युग के बाद धर्मवीर भारती की सर्वाधिक चर्चित कृति है- 'कनुप्रिया', जिसका प्रकाशन वर्ष 1959 है। इसमें राधा की कृष्ण के प्रति रागात्मकता और प्रश्नाकुलता को वाणी दी गई है। कृष्ण के जाने के बाद राधा परंपरागत राधा की भांति विलाप नहीं करती, उपालंभ नहीं देती, बल्कि कृष्ण के साथ बिताये गए क्षणों की सार्थकता को अनुभव करना चाहती है। कृष्ण के साथ तन्मय होकर जो क्षण भोगे हैं, उन क्षणों को ही वह सत्य मानती है। यहाँ राधा कृष्ण से पूछती है कि क्या वह कृष्ण के लिए लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के अलंघ्य अंतराल में सिर्फ़ एक सेतु थी, क्या कृष्ण के महान बनने में उसका कुछ टूटकर बिखर गया है-

"तुम्हारे महान बनने में

क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है कनु।"[101]

यहाँ राधा प्रश्नाकुल है। वह 'तुम मेरे कौन हो, कनु?' कहकर संबंधों को विस्तार देती है और यही नहीं युद्ध की विभीषिका पर भी विचार करती है। भाषा के स्तर पर भारती ने रोमानी संस्कारों से युक्त कोमलकांत शब्दों का चयन किया है।

सपना अभी भी :

[101] धर्मवीर भारती, 'कनुप्रिया', पृष्ठ-63

'सपना अभी भी' भारती का अंतिम काव्य-संकलन है, जो 1993 में प्रकाशित हुआ। यह संकलन रोमानी भावबोध के साथ ही तथ्यपरक तटस्थ दृष्टि को भी रेखांकित करता है। धर्मवीर भारती रोमानियत को अपनी कमजोरी नहीं बनाते बल्कि इस रोमानियत को गहरी संवेदना से जोड़कर जहाँ एक संवेदनशील रचनाकार होने के कर्म को निभाते हैं, वही 'मुनादी', 'पुराना किला', 'तटस्थता' और 'तीन आत्मकथ्य' जैसी सशक्त व वैचारिक तनाव को उपस्थित करती हुई कविताओं के माध्यम से पीछे छुपे नग्न सत्य और उसकी कड़वाहट को भी पूरी ईमानदारी से व्यक्त करते हैं। "तीस वर्षों के बाद प्रकाशित यह कविता-संकलन धर्मवीर भारती की सृजनशीलता की अनवरत जीवित प्रक्रिया का साक्ष्य देता है। प्रस्तुत संग्रह की रोमांटिकता का एक वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ रोमानी तत्त्व संयत, परिपक्व और साझें में भोगे गए दर्द की समझ से, आभिजात्य से संपृक्त होकर समृद्ध हो गया है।"[102]

इन संग्रहों की कविताओं के माध्यम से भारती जी के रोमानी दुनिया को समझने का प्रयास किया गया। लेकिन इससे भी जरुरी यह है कि 'नई कविता' के रचनात्मक विकास में इनके योगदान को समझा जाये।

छायावाद से लेकर आज तक की गीत और मुक्त छंद कविता-यात्रा में रचनाकारों ने आकर्षक और नये-नये प्रयोग तो खूब किए हैं पर कविता की सहजता और संप्रेषणीयता की ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया। प्रयोगों की बहुलता ने कविता की प्रबंधात्मकता को छिन्न-भिन्न करके उसे सूक्ष्मता और अलंकरणों से इतना लाद दिया कि कविता बुद्धि –विलास की ही वस्तु बनकर रह गई। रोमानी काव्य में चूँकि शास्त्रीय नियमों का खंडन कर नवीन अनुभूति और विचारधारा को प्रकट किया जाता है, इस कारण भाषा के क्षेत्र में नवीनता होती है। नए विचार पुरानी शब्दावली में प्रकट करना असंभव है, अतः

[102] चंद्रकांत बांदिवडेकर, 'धर्मयुग', (१-१५ अप्रैल 1994, अंक-7) पृष्ठ-32

नई सोच और दृष्टि को नवीन भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। रोमानी कवि अपने भावों को सहज रूप से सहज भाषा में व्यक्त करना ज्यादे उचित समझता है। भाषा वही जो भावों को व्यक्त कर सके और एक बड़े वर्ग तक पहुँच सके। नई रोमानी कविता छायावाद के बोझिल भाषा संस्कार से अलग होती है और एक अलग तेवर में ढलती है। भारती का रचना संसार इस नई रोमानियत को बारीकी से गढ़ता है। चाहे वह 'कनुप्रिया' की गीतात्मकता हो या फिर 'ठंडा लोहा' की भावुक संवेदना की कविताएँ हो।

कई रूपों में ढली हुई कविताएँ आश्वस्त करती हैं कि रोमानी दृष्टि में पगा मन कविता के गठन को कमजोर नहीं बल्कि 'नई कविता' की दृष्टिकोण से मजबूत किया है। जहाँ 'एक पत्र' कविता का एक अंश-

"सुना है मैं ने मधु के गीत सिखा देता है कवि को प्यार,

सुना है पढ़ दो आखर प्रेम कुशल बन जाता है संसार

मगर मेरे शब्दों पर आज तुम्हारे ही सपनों का भार

कि जो गति को कर देता मंद, उलझ जाता है जैसे डोर

कि जैसे तट से टकरा टूट-फूट जाता लहरों का शोर!"[103]

नई कविता के कवियों में धर्मवीर भारती की पहचान इस दृष्टि से भी अलग बनती है कि उनकी कविता सजी-धजी तो है पर उसमें एक कथा-सूत्र हर कहीं विद्यमान है और सहजता के साथ प्रवाह की एक ऐसी धारा है जो पाठक को साथ बहाती चलती है।

"यह फूल, मोमबत्तियाँ और टूटे सपने

[103] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', 'एक पत्र' कविता, पृष्ठ संख्या-35

ये पागल क्षण

यह काम-काज, दफ्तर-फाइल, उचटा-सा जी

भत्ता वेतन !

ये सब सच हैं !

इनमें से रत्ती भर न किसी से कोई कम,

अंधी गलियों में पथभ्रष्टों के गलत कदम

या चंदा की छाया में भर-भर आने वाली आँखें नम

बच्चों की सी दूधिया हँसी या मन की लहरों पर

उतराते हुए कफ़न !

ये सब सच हैं !"[104]

ये ऐसे सच हैं जिनपर चल कर कविता वास्तविक जीवन- बोध को व्यक्त करती है। मनुष्य के इस विराट जीवन को किसी भी माध्यम से व्यक्त करना केवल कलाकार के ही वश में है। कलाकार के पास अनुभूति की तीव्रता उस क्षण विशेष में ऐसी होती है जो कुछ अलग पैदा करती है। चाहे उसकी अभिव्यक्ति किसी भी रूप में क्यों न हो, लेकिन विशिष्ट होगी।

भारती के यहाँ 'सृजन के क्षण' का विशेष महत्त्व है। वे प्रत्येक क्षण को मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के लिए अहम मानते हैं। उनके अनुसार "वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति संवेदनाजन्य अंतरात्मा की पुनः प्रतिष्ठा का एक वेदनापूर्ण दायित्व है जिसका निर्वाह हमें प्रतिक्षण करना पड़ता है। वे ही अर्थवान क्षण हैं, आत्मोपलब्धि के क्षण हैं, आत्मोपलब्धि के क्योंकि उन्हीं में हम अपने को पाते हैं- अर्थात अर्थहीन

[104] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-87 (फूल, मोमबत्तियाँ, सपने)

शून्यता या अयथार्थ मूलक अनस्तित्व से मुक्त कर अपने को सार्थक पाते हैं।"[105] भारती जी का यह मानना है कि जितना कुछ बाहर घटित होता है उससे ज्यादे मनुष्य के भीतर घटने वाली घटना का सृजन में महत्त्व है। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रयोगवाद में जिस क्षण के महत्त्व को स्वीकार किया गया है वह भारती जी के यहाँ कविताओं में अर्थवत्ता के साथ मौजूद है। जिसका पूर्ण विकास नई कविता में दिखाई देता है।

भारती जी की 'कनुप्रिया' नई कविता की एक उपलब्धि है, जिसमें वो सभी तत्त्व विद्यमान है जिससे नई कविता के प्रतिमान गढ़े गए हैं।

नई कविता ने जिस तरह से सभी छोटी-छोटी चीजों को, आम व्यक्ति को रचना के केंद्र में रखा। समाज को बेहतर करने की दृष्टि से समानता का लक्ष्य रखा और 'लघु मानव' की गरिमा को रचना में प्रतिष्ठित किया। भारती जी ने रहस्यवादियों की उस साधना को अनुचित ठहराया जो केवल विराट ब्रह्म से साक्षात्कार को ही पूर्णत्व मानता है। भारती के लिए "मानवीय गरिमा की वास्तविक प्रतिष्ठा के लिए 'समानता' की शर्त पहली शर्त है। ...दूसरी शर्त यह है कि मानव मात्र की नियति से अपने को आबद्ध समझें"[106] भारती के यहाँ आधुनिकता-बोध जो बदलते सामाजिक मूल्यों को साथ लेकर चलती हैं, उन्हें और प्रासंगिक बनाता है। जो लोग उनकी प्रेम में पगी रचनाओं को हासिए पर रखते हैं, असल में वो भारती की रचनाओं की गंध से फूलों का अनुमान लगाते फिरते हैं। तीव्र भावनाएं शब्दों पर लगाम भले न लगा पाएँ लेकिन अनुभव को और प्रामाणिक बनाती हैं। 'नियति' को मानने वाले बौद्धिक सिद्धांतों को 'अंधायुग' में चुनौती मिलती है। नियति मनुष्य से विकल्प की स्वतंत्रता और संकल्प की

---

[105] धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ संख्या-35

[106] वही, पृष्ठ संख्या-36

गरिमा छीन लेते हैं। ऐसे में मनुष्य के अपने अपने निर्णय का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है, अपने विवेक की कोई सार्थकता नहीं रह जाती। इसलिए भारती इस बात पर बार-बार बल देते हैं-

"नियति नहीं है पूर्वनिर्धारित,

उसको प्रतिक्षण मानव निर्णय बनाता-मिटाता है।"[107]

भारती ने मानवीय मूल्यों की स्थापना पर अपनी रचनाओं में ज़ोर दिया है। इनके साहित्य में मूल्य एक धारणा, अनुभव तथा जीवन-दृष्टि है। यह जीवन-दृष्टि हमेशा आदर्श होती है। साथ ही प्रत्येक मूल्य मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा होता है। यथास्थिति से ऊब जाने पर मूल्यों में परिवर्तन होता है । ज्यों-ज्यों आवश्यकतायें बदलती हैं, मूल्य भी बदल जाते हैं। भारती अपने समय के मूल्यों को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं. लेकिन अपनी एक कविता 'निवेदन' के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को खोजने की मनाही करते हैं-

"ये कविताएँ,

यह कथा-कहानी-उपन्यास,

इनके अन्दर तुम नाहक़ मुझको ढूढ रहे !

ये गलियाँ थीं,

इनसे होकर मैं गुज़र चुका,

यह केंचुल है, जो धीरे धीरे छूट रही!"[108]

[107] धर्मवीर भारती, 'अंधायुग', पृष्ठ संख्या- 30

[108] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', (निवेदन-कविता) पृष्ठ संख्या-89

भारती जी इस बात पर बल देते हैं मनुष्य का अपनी परिस्थितियों से संबंध, मनुष्य और मनुष्य का रागात्मक अथवा सामाजिक संबंध, मनुष्य का निरपेक्ष सत्य, मर्यादा, मूल्य या किसी अरूप भावनात्मक अथवा आदर्शात्मक सत्ता से संबंध, इन संबंधों की विविधता और इनका वैचित्र्य तथा इन सबके जटिल प्रभाव से निर्मित होने वाला मानव-व्यक्तित्व अपनी असंख्य विविधताओं में अपरिमित संभावनाओं को छिपाए रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-प्रणाली में, अपने आत्मान्वेषण में दूसरे से बिलकुल पृथक रहता है। इसलिए जीवन और विचार के स्तर पर इतनी सारी विविधतायें हैं। नित्यानंद तिवारी इन विविधताओं या नए मूल्यों का जन्म विवशता के कारण मानते हैं। उनका कहना है कि "मूल्य सदैव विवशता के भीतर उपजता है, संबंधों के संतुलन में उपजता है।"

नई कविता केवल "शिल्पाग्रह की कविता नहीं है बल्कि जीवनाग्रह की कविता है।"[109] इस अवधारणा के पीछे रचनाकार मात्र की अपने युगबोध और शिल्प संबंधी दायित्त्व को ग्रहण करने की चेतना रही है। नई कविता के सारे हस्ताक्षर अपना यह दायित्व पीड़ा, विवेक और चेतना के द्वारा खोजना चाह रहे हैं। "नया कवि किसी बाह्यारोपित दायित्त्व को नहीं स्वीकारा करता। वह स्वातंत्र्य का हक़ माँगता है ताकि वह अपनी सार्थकता खोज सके।"[110]

भारती अपने इस मत की पुष्टि के लिए प्रकृति, रागात्मक बोध और जीवन-संघर्ष की पहचान देने वाले चार उद्धरण केदारनाथ सिंह, अज्ञेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कुँवर नारायण की कविताओं से देते हैं। नई कविता के भीतर कई तरह की वृत्तियाँ हैं जिसका अवलोकन उतने ठीक तरीके से हो नहीं पाता, क्योंकि 'नया' मानने की चुनौती हमेशा से रही है। क्या जो पहले से भिन्न है वह नया है या उसके कुछ मानक तय किये गये हैं। रूप और वस्तु संबंधी विवाद के बारे में रामविलास शर्मा की टिप्पणी कि

---

[109] धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', पृष्ठ संख्या-178

[110] वही, पृष्ठ संख्या-179

"साहित्य में रूप और वस्तु एक दूसरे से संबंध ही नहीं होते बल्कि एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। ...लेकिन यह बात साहित्यिक कृति के संबंध में ही संभव है यानी उस वस्तु के संबंध में जो हमें साहित्य की रचना प्रक्रिया के संपन्न होने के बाद प्रतिफल रूप में प्राप्त होते हैं- कला और विषय वस्तु दोनों ही समान रूप से साहित्य रचना के लिए निर्णायिक महत्त्व की नहीं हैं। निर्णायिक भूमिका हमेशा विषय-वस्तु की ही रही है।"[111] धर्मवीर भारती ने भी मुख्यतः विषय-वस्तु को ही महत्त्व दिया है और 'कनुप्रिया' में गीत मूल छंद और अतुकांत शैली को अपनाया है। जो नई कविता की दृष्टि से बेजोड़ है। 'प्रमथ्यु गाथा' भी भारती की वह सशक्त रचना है जिसमें मानवीय जीवन के संघर्ष, अदम्य जिजीविषा की अभिव्यक्ति लंबी कविता के रूप में व्यक्त हुई है।

भारती ने नए प्रकार के सांस्कृतिक बिंब जहाँ कनुप्रिया में रचे हैं वहीं 'अंधायुग' नामक गीतिनाट्य में कवि की अनुभूति पुराने के माध्यम से नए स्वर में हुई है। यथा-

"यह अँधायुग अवतरित हुआ

जिस में स्थितियाँ, मनोवृत्तियां, आत्माएँ सब विकृत है

है एक बृहत् पतली डोरी मर्यादा की

पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में...

शेष अधिकतर हैं अँधें

पथभ्रष्ट आत्महारा विगलित

अपने अंदर की अंध गुफाओं के वासी

[111] रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील साहित्य की समस्या', पृष्ठ संख्या-67

यह कथा उन्हीं अंधों की है

यह कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से...”[112]

इन पंक्तियों में बिंब, प्रतीक, मिथक व आधुनिकता का मिलाजुला प्रयोग दृष्टव्य होता है, जो भारती की अपनी विशिष्ट शैली भी है। इसतरह नई कविता की सभी शैलियाँ भारती की कविताओं में परिलक्षित होती है।

जीवन संघर्ष में रागात्मक बोध ही कवि कर्म को सशक्त आधार प्रदान करते हैं। जीवन शक्ति और जीवन संघर्ष की पक्षधरता प्रकरांतर से राग-प्रेम के बृहत्तर संदर्भों से जुड़ी होती है। यहाँ प्रेम, राग और रागात्मक बोध से तात्पर्य केवल वासनात्मक प्रेम या देह राग का बोध न होकर प्रकृति, ऋतु, समाज व मानवीय वैश्विक संबंधों में राग द्वेष का प्रतिबद्धतापूर्ण प्रचार प्रसार है। भारती का रोमानी साहित्य भी उसी दिशा में एक प्रयास है। जीवन संघर्ष की पक्षधरता और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति ही रचनाकार को प्रासंगिक या महत्वपूर्ण बनाती है। धर्मवीर भारती पर ‘रागात्मक बोध’ या ‘देह राग’ को आलापने वाला रचनाकार का आरोप लगाने वाले यह भूल जाते हैं कि धर्मवीर भारती ने ‘प्रमथ्यु गाथा’, ‘पराजित पीढ़ी का गीत’, ‘गुलाम बनाने वाले’, ‘बाणभट्ट’, ‘बृहन्नला’, ‘टूटा पहिया’, ‘कविता की मौत’, ‘सुभाष की मृत्यु पर’, ‘निराला के प्रति’ जैसी कविताएँ और ‘अंधायुग’, ‘कनुप्रिया’ जैसी कृति रची है। साथ ही जयप्रकाश नारायण के आंदोलन के समय ‘मुनादी’ कविता भी रची है। इनकी कविता ‘ठंडा लोहा’ में नए विश्वास और आस्था को पुनः पैदा करती है। जहाँ आदमी हैवान बन गया है, मुसीबतों से घिरा हुआ है, विद्रोही बन गया है, इसके बावजूद कविता नया विश्वास और नया इतिहास देने की बात कहने का साहस करती है। यथा-

[112] धर्मवीर भारती, ‘अँधा युग’, पृष्ठ संख्या- 40

"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,

अभी मेरी आख़िरी आवाज़ बाक़ी है,

हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा,

आदमियत का मगर आगाज़ बाक़ी है!

लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ,

नया इतिहास देती हूँ!"[113]

भारती को मूलतः रोमानी कवि के रूप में ही देखा गया लेकिन समय के साथ बदलते परिवेश ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि उनकी रचनाओं में चाहे कविता हो, कहानी हो, निबंध हो या उपन्यास, सभी में एक जागरूक कलाकार के दर्शन होते हैं।

"शायद कुछ होगा नया गठन

आश्रय देंगे हमको अपने

जर्जर पर अपराजेय चरण।"[114]

मनुष्य के पैर चाहे जर्जर हो जाये पर अपराजेय है, इसी में मनुष्य की, उसके कर्म की विजय है। बाहर की शक्ति काम आये या न आए, पर नया गठन करने के लिए खुद का संबल ही काम आएगा। अपने आप पर विश्वास होना और मन में मंजिल तक पहुँचने की अविराम इच्छा आवश्यक है।

[113] धर्मवीर भारती, 'ठंडा लोहा', पृष्ठ संख्या-46

[114] धर्मवीर भारती, 'सात गीत वर्ष', पृष्ठ संख्या : 24-25

“स्वातंत्र्योत्तर काल में सबसे प्रमुख चिंता सामान्य जन की मुक्ति रही है।”[115] आज समाज की व्यवस्था ऐसी बनी है कि ‘मनुष्य’ का शोषण किसी-न-किसी रूप में हो ही रहा है। बाज़ार ने सबको आर्थिक बंदी बना रखा है। मनुष्य की जरूरतें अब बाजार और विज्ञापन मिलकर तय कर रहें हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने सबको तेजी से संचालित करने लगा, इसमें मनुष्यता पीछे छूट गयी। प्रगति चाहे चाँद पर बसने की हो जाए लेकिन मनुष्य द्वारा मनुष्यता की अवहेलना है तो सब बेकार है। एक संवेदनशील और सजग रचनाकार प्रगति के खिलाफ़ तो नहीं होगा लेकिन मनुष्यता को तरजीह जरुर देगा। भारती भी रोमानियत के माध्यम से मानवता को बनाये रखने की पुरजोर कोशिश करते हैं। वे कहते भी हैं कि “मानवता को प्यार करने वाले एक ईमानदार कलाकार के नाते प्रगति मेरा ईमान है, मेरी कलम की जबानी है।”[116] आज के मनुष्य के प्रति उनकी आस्था और चिंता दोनों रही है। इनकी रचनाओं में संवेदना व विचारगत वैविध्य उनकी जागरूकता के कारण ही दिखाई पड़ता है। “आधुनिक युग में जीवन-दृष्टि विषयक नवीन स्थापनाओं और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण नई संवेदनाओं का उद्भव एक अनिवार्य ऐतिहासिक तथ्य है। अतः आधुनिक वैज्ञानिक युग ने अनेक जीवन दृष्टियों का उन्मीलन किया है इसलिए अनेक प्रकार की संवेदनागत वैविध्य का उनकी रचनाओं में परिलक्षित होना स्वाभाविक है।”

मानवीय जीवन और परिवेशगत संवेदनाओं के इस वैविध्य में कभी-कभी यह भी होता है कि इसी विविधता में मानवता का स्वर एकता प्रदान करता है। साहित्य या कलाकृति पश्चिम की हो या पूर्व की यह सर्वमान्य मानवता का स्वर अलग-अलग रीति से व्यक्त होता है और मानव मूल्य की स्थापना करना चाहता है। इसमें सिर्फ निजी मुक्ति या सामान्य मनुष्य का अतिक्रमण करके अलौकिक सत्ता की

---

[115] धर्मवीर भारती, ‘मानव मूल्य और साहित्य’, पृष्ठ संख्या-74

[116] धर्मवीर भारती, ‘प्रगतिवाद: एक समीक्षा, पृष्ठ संख्या-02

बात नहीं होती। यहाँ सिर्फ मानवीय संबंधों को जीवित रखने की, एक दूसरे की सौहार्द और 'गरिमा' की प्रतिष्ठा की बात होती है।

वस्तुतः कोई भी कलाकार या साहित्यकार जो कुछ नया सृजन करना चाहता है वह अपने यथार्थ को झेलता है, अनुभव करता है और उसे ही विश्लेषित करके कलाकृति का रूप देता है। यह रूप फिर शब्दों में हो या संगीत में, रंगों में रमा हुआ हो या फिर चित्र में। हर कलाकार अपनी अन्तश्चेतना के अनुरूप उसे रूप देने का प्रयत्न करता है। इसीलिए अलग-अलग कृतियों का जन्म होता है, अलग-अलग धाराएँ जीवन में तथा साहित्य में अपना-अपना अस्तित्व कायम करने की कोशिश करती है। मनुष्य की कला साहित्य में, विज्ञान में, चित्रकला में, स्थापत्य में, जीवन के हर पहलू में दिखाई देती है। समय के साथ-साथ यथार्थ बदलता है, ज्ञान बदलता है, परिभाषाएं बदलती है, मानव और मानव-मूल्य बदलते हैं। इस बदलाव को सभी अपनी कलाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। भारती की रचनाएँ भी अपने समय के मुहावरे में प्रेम और सौंदर्य की नई परिभाषा गढ़ती हैं। चूँकि परिभाषाएँ स्वतंत्र नहीं होती इसलिए 'नई कविता' के सरोकारों से जुड़कर अपने को अर्थवान बनाती हैं।

उपसंहार

उपसंहार

'धर्मवीर भारती के रोमानी काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय के अंतर्गत रोमानियत के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए रोमानी-काव्य की परंपरा में एक ऐसे रचनाकार के पाठ को आधार बनाया गया जो जितना रोमानी है उससे कहीं ज्यादा आधुनिक चेतना से प्रभावित भी है। 'रोमानी' को बिना किसी वैचारिकी से जोड़े इसके स्वतंत्र अर्थ को खोजने की कोशिश भारती जी के रचनाओं में की गई है। जिसका सरोकार मनुष्य के उस भाव-जगत की खोज से भी है जिसके बगैर मानव-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इस भाव के न होने से मानवीय जीवन का वह रोमांच खत्म हो जाएगा जो उसको गुलज़ार करता है और रंगीनियत भरता है। धर्मवीर भारती अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य के साथ अनेक विधाओं में अपनी पहचान को कायम किए। कविता, उपन्यास, समीक्षा, आलोचना, संपादन, पत्रकारिता –इन सभी क्षेत्रों में इनका बहुमूल्य योगदान है लेकिन अंततः साहित्य के अनेक राहों के इस यात्री को कविता की राह अत्यंत प्रिय लगी और उन्होंने अपनी इन कविताओं में तरह-तरह की अनुभूतियों और अनुभवों को स्वर दिया है। साहित्य जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "जनता या शिक्षित जनता की संचित मनोवृत्तियों का प्रतिफलन या प्रतिबिंब होता है" या शुक्ल जी से पहले बालकृष्ण भट्ट ने कहा था "साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है" तो निश्चय ही मनुष्य के भीतर या समाज में जो कुछ घट रहा है, साहित्य में उसकी कलात्मक प्रस्तुति या प्रतिबिंबन होता है। साहित्य और सामाजिक जीवन या साहित्य और समाज का रिश्ता सरल या यांत्रिक नहीं होता है। यह रिश्ता द्वन्द्वात्मक होता है, जिसमें साहित्य और समाज एक-दूसरे से प्रभावित होतें हैं या एक-दूसरे को प्रभावित करते भी हैं। यह प्रभाव यांत्रिक नहीं होता बल्कि मनुष्य के भीतर के रचनात्मक मानस की कलात्मकता के कारण होता है। यदि मानवीय जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण विद्यमान है, गतिशील और सक्रिय है, तो उसकी सारभूत सच्चाई को रचनात्मक अभिव्यक्ति का अंग बनना चाहिए। मसलन यदि

रोमानियत मानवीय जीवन की शाश्वत सच्चाई है और उसकी जड़ें स्थाई रूप से मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं से जुड़ी हैं। तो जाहिर तौर पर रोमानी मनोभाव साहित्यिक रचनाशीलता को हमेशा खुराक देती रहेगी। धर्मवीर भारती का काव्य संसार इसी मनोभाव की देन है। मैं जब भारती की रचनाओं से गुजरा तो एक अलग तरह की अनुभूति से होकर गुजरा। जहाँ एक व्यक्ति दुनिया के सभी वैचारिक बहसों से हटकर, सभी मुश्किलों को किनारे करके उसी को प्राथमिकता देता है जो सुखद है, जो जीवन को जीने के लिए जुनून पैदा करता है। एक तरह से देखा जाए तो मनुष्य के जीवन का यह सच है, वो चाहे जितनी तरक्की कर ले, भौतिक संपदाओं से जितना समृद्ध हो जाए। जीवन के सबसे कठिन दौर में जब सब निराश करते हो तब वह इन्हीं भावों की ओर लौटता है और जीने का खुराक लेता है। मनुष्य का ऐसा भाव जो सबसे अनमोल है। 'गुनाहों का देवता' साहित्य में इस भावना से रचित आदर्श रचना है।

हिंदी में रोमानी काव्य की प्रवृत्तियों को दिखाते हुए उनके प्रमुख आधार स्रोतों की पड़ताल की गयी। हिंदी में स्वच्छन्दतावाद संबंधी मान्यताओं की पड़ताल करते हुए मैंने पाया कि 'रोमानी' जो स्वच्छंदतावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति जरुर है। लेकिन स्वच्छंदतावाद के इतर भी इसके विस्तृत और स्वतंत्र अध्ययन की संभावनाएँ है। जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए. युग चाहे जो हो मनुष्य की वो भावनाएं सबसे महान है जो बेहतरी का प्रयास करती है।

इस शोध के निष्कर्ष रूप में मैंने पाया कि धर्मवीर भारती की कविताएँ रोमानी काव्य परंपरा में सार्थक हस्तक्षेप करती हैं और रोमानियत को देखने-समझने की व्यापक दृष्टि देती हैं। भारती को उनके कथा साहित्य और पत्रकारिता के कारण तो हमेशा याद किया जाता है लेकिन उनकी कविताओं की नोटिस कम ली गयी. इस शोध के माध्यम से मैंने कविता यात्रा के विकास में भारती की कविताओं के ठहराव को दिखाने की कोशिश की। नई कविता की पृष्ठभूमि में भारती की कविताएँ बेहतर आश्वासन देती हैं

और एक नए रचनात्मक तेवर के साथ कविता और गीत को समृद्ध करती हैं। कविता का वास्तविक प्रयोजन क्या है? यह सवाल हमेशा से रहा है। क्या वह मनुष्य को जगाने, सुधारने और उन्नत बनाने के लिए है, या उसका प्रयोजन आदमी को रिझाना और प्रसन्न करना है? या इसका ध्येय कुछ और है इसको बहुत प्रमाणिकता के साथ नहीं बताया जा सकता। लेकिन मैं एजरा पाउंड की बात को ज्यादे प्रमाणिक समझता हूँ, जिसमें वो कहते है कि- "कविता केवल कविता है जैसे वृक्ष केवल वृक्ष है। वृक्ष अपनी जगह पर स्थिर खड़ा हुआ है। वह किसी को भी नहीं बुलाता, फिर भी लोग उसकी हरियाली को देखकर खुश होते है. उसकी छाया में बैठते हैं और अगर वह फलदार हुआ तो वे उसके फल तोड़ कर खा लेते हैं।" भारतीय मनीषा कितने रूपों में प्रतिफलित होती है कविता भी उसकी एक झलक है।

इस तरह सृजनात्मकता और जीवन मूल्यों के संबंध में भारती के जो भी विचार हैं वो सभी महत्वपूर्ण है। जीवन का सुख-दुःख, मनुष्य के जीवन का अर्थ, रचना की प्रासंगिकता, सृजन का मनोविज्ञान और अपने-अपने रचना काल के संघर्ष सब न केवल भारतीय साहित्य के अमूल्य दस्तावेज़ हैं, वरन जीवन जीने के लिए बहुत संबल देते हैं। भारती का रचना संसार अतीत और वर्तमान दोनों को समझने की दृष्टि देता है। एक तरफ परम्परागत संस्कार, मिथक और पौराणिक आख्यान को लेकर 'कनुप्रिया', और 'अंधायुग' की रचना संभव हुआ है तो वही आधुनिक मूल्यों के बदलाव और संबंधों का खुलापन 'ठंडा लोहा', 'साथ गीत वर्ष' और 'सपना अभी भी' के माध्यम से व्यक्त हुआ है। ऐसे में भारती का मूल्यांकन समग्र दृष्टि की माँग करता है, जहाँ आपको पुराने के मोह को त्यागे बगैर वर्तमान की सच्चाई को स्वीकार करनी होगी, क्योंकि वर्तमान की ईमारत इतिहास के नींव पर ही खड़ी हो सकती है। भारती की दृष्टि की सूक्ष्मता और सजगता को 'टूटे पहिये' के आश्रय में देखिये-

"लेकिन मुझे फेंको मत

इतिहासों की सामूहिक गति

सहसा झूठी पड़ जाने पर

क्या जाने

सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले !”

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ-सूची

01. ठंडा लोहा : धर्मवीर भारती

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

तृतीय संस्करण :जनवरी 1976

02. सात गीत-वर्ष : धर्मवीर भारती

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

पाँचवाँ संस्करण, 1994

03. सपना अभी भी : धर्मवीर भारती

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

द्वितीय संस्करण-1994

04. कनुप्रिया :धर्मवीर भारती

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

चतुर्थ संस्करण-मार्च 1972

05. अँधा युग : धर्मवीर भारती

किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद

संस्करण-1987

सहायक ग्रंथ-सूची

01. दूसरा सप्तक : संपादक- अज्ञेय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

तीसरा संस्करण-2009

02. नवजागरण देशी स्वच्छन्दतावाद और नई काव्यधारा, कृष्णदत्त पालीवाल

स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2007

03. हिंदी स्वच्छन्दतावादी काव्य, प्रेमशंकर

मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रथम संस्करण- 1974

04. हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय

राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1967

05. कवि दृष्टि, अज्ञेय

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण - 1983

06. रोमांटिक साहित्यशास्त्र, देवराज उपाध्याय

आत्माराम एन्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम संस्करण-1951

07. छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. कुमार विमल

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

तृतीय संस्करण - 1989

08. आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य, डॉ.रामेश्वरलाल खंडेलवाल

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

संस्करण-1958

09. हिंदी साहित्य : प्रमुख वाद एवं प्रवृतियाँ, डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण-1971

10. स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, जगदीश गुप्त

प्रगीत प्रकाशन, आगरा

प्रथम संस्करण-1977

11. घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, मनोहर लाल गौड़

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

संवत-2015

12. कविता का पक्ष, रामस्वरूप चतुर्वेदी

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

संस्करण-1994

13. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

अठारहवाँ संस्करण-2005

14. अवधारणाओं का संकट, पूरनचंद्र जोशी

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

प्रथम संस्करण- 1995

15. आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1993

16. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

छठां संस्करण-1992

17. छायावाद का पतन, डॉ. देवराज

वाणी मंदिर प्रेस, छपरा

संस्करण-1948

18. आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृतियाँ, डॉ. नगेन्द्र

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

तृतीय संस्करण- अगस्त, 1966

19. यथा प्रसंग, नंदकिशोर नवल

किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1992

20. आज और आज से पहले, कुँवर नारायण

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1998

21. छायावाद : पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण-1965

22. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ. हरिवंश पांडेय,

अतुल प्रकाशन, कानपुर

प्रथम संस्करण-1991

23. धर्मवीर भारती, संपादक- प्रभाकर श्रोत्रिय

मोहनलाल केडिया हिंदी साहित्य न्यास

प्रथम संस्करण-1992

24. धर्मवीर भारती : अनुभव और अभिव्यक्ति, डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम

भारत पुस्तक भंडार, संस्करण-1999

25. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल

प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण-2014

26. छायावाद, नामवर सिंह

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

बारहवीं आवृत्ति-2013

27. साहित्य का शास्त्र (आरंभिक परिचय), नित्यानंद तिवारी

स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली

संस्करण- 2013

28. छायावाद : उत्थान पतन पुनर्मूल्यांकन, डॉ. देवराज

कल्पकार प्रकाशन, 52 बादशाह नगर, लखनऊ

प्रथम संस्करण-1975

29. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, संपादक- पुष्पा भारती

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

पहला संस्करण- 2001

30. हिंदी नवस्वच्छन्दतावाद, डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा

रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण-1979

31. छायावाद की परिक्रमा, श्यामबिहारी मिश्र

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण- 1975

32. नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी

मैकमिलन कंपनी इंडिया लि., दिल्ली

प्रथम संस्करण- 1978

33. आस्था और सौंदर्य, डॉ. रामविलास शर्मा

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1990

34. चिंतामणि, भाग-एक, रामचंद्र शुक्ल

संजीता प्रकाशन, इलाहाबाद,

प्रथम संस्करण-2000

35. छठवाँ दशक, विजयदेवनारायण साही

हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

संस्करण-1982

36. मेरे समय के शब्द, डॉ. केदारनाथ सिंह

राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

प्रथम संस्करण- 1993

37. आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान, डॉ. केदारनाथ सिंह

राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1994

38. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

संस्करण-1962

39. कामायनी, जयशंकर प्रसाद,

राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली

तीसरी आवृत्ति : 2000

40. विद्यापति पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी

लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद

सातवाँ संस्करण-2016

41. रोमांटिक युगीन अंग्रेजी कविता और छायावाद, कृष्णमुरारी मिश्र

प्रगति प्रकाशन, आगरा

संस्करण-1979

42. आधुनिक हिंदी कविता की स्वछंद धारा, त्रिभुवन सिंह

हिंदी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी

तीसरा संस्करण-1977

43. बिहारी सतसई (भाग-एक), संपादक-देवेन्द्र शर्मा

विनोद पुस्तक मंदिर,

संस्करण-1978

44. ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

संस्करण-1977

45. राग-विराग, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', संपादक-रामविलास शर्मा

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

संस्करण-2011

46. सौन्दर्य दृष्टि का दार्शनिक आधार, डॉ.मुकेश गर्ग

कनिष्का प्रकाशन

संस्करण-2015

47. भारती का काव्य, रघुवंश

मैकमिलन कंपनी प्रा.इंडिया लिमिटेड,

संस्करण-1980

48. अनामिका, सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’

भारती भंडार, इलाहाबाद

संस्करण-1986

49. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य-चेतना, डॉ. प्रतिभा गर्ग

अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

संस्करण-1994

50. विचार-प्रवाह, हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा. लि., मुंबई

संस्करण-1959

51. सर्जक और संप्रेषण, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन ‘अज्ञेय’

नेशनल पाब्लिसिंग हाउस,

संस्करण-1987

52. Decline of the West, Spengler Oswald, Edited by-Charles Francis Atkinson

London: George Allen and Unwin,

Edition-1980

कोश

01. मानविकी पारिभाषिक कोश, संपादक-डॉ.नगेंद्र

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण-1968

02.बृहत् अंग्रेजी-हिंदी कोश, संपादक-हरदेव बाहरी

जनानमंडल लिमिटेड

संस्करण-1969

वेब-संदर्भ

01. http://www.kavitakosh.org/kk/जाग_तुझको_दूर_जाना_/_महादेवी_

02. http://kavitakosh.org/ गरज बरस प्यासी धरती पर फिर पानी दे मौला / निदा फ़ाज़ली